मित्रभाव बढ़ाने की कला

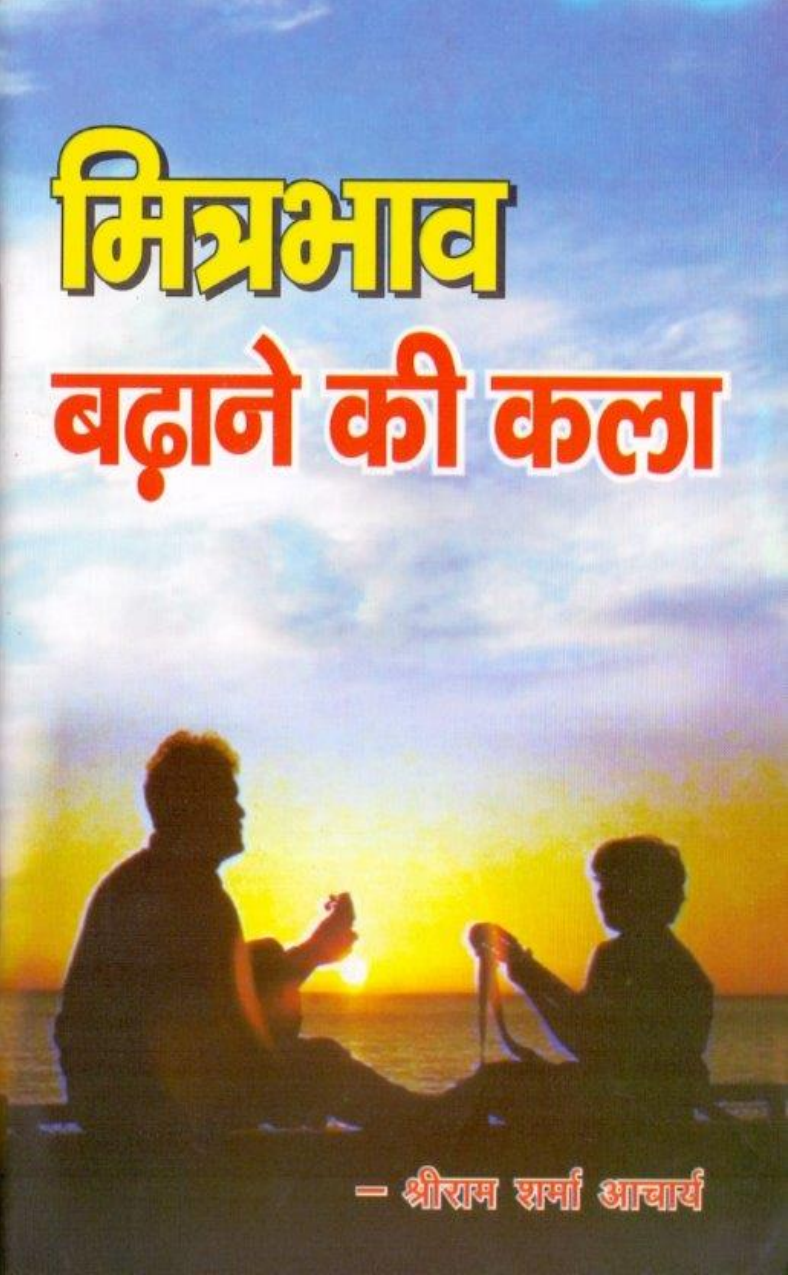

— श्रीराम शर्मा आचार्य

मित्रभाव बढ़ाने की कला

*

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् **२०१५** मूल्य ९.०० रुपये

भूमिका

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसने इतना अधिक बौद्धिक एवं भौतिक विकास किया है, इसका कारण उसकी सामाजिकता ही है। साथ-साथ प्रेमपूर्वक रहने से आपस में सहयोग करने की भावना उत्पन्न होती है एवं मनुष्य अकेला केवल अपने बल-बूते पर कुछ अधिक उन्नति नहीं कर सकता, दूसरों का सहयोग मिलने से शक्ति की आश्चर्यजनक अभिवृद्धि होती है, जिसके सहारे उन्नति के साधन बहुत ही प्रशस्त हो जाते हैं।

मैत्री से मनुष्यों का बल बढ़ता है। आगे बढ़ने का, ऊँचे उठने का, क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। आपत्तियों और आशंकाओं का मैत्री के द्वारा आसानी से निराकरण किया जा सकता है। आंतरिक उद्वेगों का समाधान करने में संधि-मित्रता से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। आत्मा का स्वाभाविक गुण प्रेम है, प्रेम को परमेश्वर कहा जाता है। प्रेम के बिना जीवन में सरसता नहीं आती। यह प्रेम वहीं संभव है जहाँ सुदृढ़ मैत्री हो।

स्वास्थ्य, धन और विद्या के समान मैत्री भी आवश्यक है। परंतु दुःख की बात है कि बहुत से मनुष्य न तो मैत्री का महत्त्व समझते हैं और न उसके जमाने, मजबूत करने एवं स्थायी रखने के नियम जानते हैं। उन्हें जीवन भर में एक भी सच्चा मित्र नहीं मिलता। यह पुस्तक इसी उद्देश्य को लेकर लिखी गई है कि लोग मैत्री के महत्त्व को समझें, उसे सुदृढ़ बनायें तथा स्थायी रखने की कला को जानें और मित्रता से प्राप्त होने वाले लाभों के द्वारा अपने को सुसंपन्न बनाएँ। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक से जनता को लाभ होगा।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

१. मित्रता की आवश्यकता ४
२. दूसरों को अपना बनाने की कला २३
३. दूसरों को अपने मत का बनाने का उपाय ४०

मित्रभाव बढ़ाने की कला

मित्रता की आवश्यकता

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने आप में पूर्ण नहीं है। मेढक का बच्चा जन्म लेने के बाद अपने आप, अपने बाहुबल से अपना जीवनयापन कर लेता हैं। परंतु मनुष्य का बच्चा बिना दूसरे की सहायता के एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। उसे माता-पिता की, वस्त्रों की, मकान की, चिकित्सा की आवश्यकता होती है। यह चीजें दूसरों की सहायता पर ही निर्भर है। बड़े होने पर भी उसे भोजन, वस्त्र, व्यापार, शिक्षा, मनोरंजन आदि की जिन वस्तुओं की जरूरत पड़ती है, वे उसे दूसरों की सहायता से ही प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि मनुष्य सदा ही दूसरों के सहयोग का भिखारी रहता है। यह सहयोग उसे प्राप्त न हो, तो उसका जीवन निर्वाह होना कठिन है।

अपना अस्तित्व स्थिर रखने के लिए मानव प्राणी (जो कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत कमजोर है) दूसरों का सहयोग लेता है और उन्हें अपना सहयोग देता है। रुपये को माध्यम बनाकर इस सहयोग का आदान-प्रदान समाज में प्रचलित है। एक आदमी अपने एक दिन के समय एवं श्रम से तीस सेर लकड़ी जमा करता है। दूसरा मनुष्य एक दिन के समय एवं श्रम से मिट्टी के दो घड़े बनाता है। अब घड़े वाले को लकड़ी की जरूरत है और लकड़ी वाला घड़े चाहता है तो आधो लकड़ी वह घड़े वाले को दे देता है और घड़े वाला अपना एक घड़ा लकड़ी वाले को दे देता है। दूसरों शब्दों में इस परिवर्तन को यों भी कह सकते हैं कि आधे-आधे दिन का समय एक ने दूसरे को बदल लिया। चीजों को यहाँ से वहाँ ले जाने की कठिनाई के कारण श्रम या समय को रुपयों में परिवर्तन किया जाने लगा, इससे लोगों को सुविधा हुई। बीस सेर लकड़ी को बीस रुपये में बेच दिया अर्थात् एक दिन के श्रम को बीस रुपये से बदल लिया। यह बीस रुपया एक मनुष्य

के एक दिन का श्रम है। दूसरे मनुष्यों का श्रम भी इसी प्रकार रुपयों में परिवर्तित होता है और फिर इन रुपयों से जो चीजें खरीदी जाती हैं वह चीजें भी समय का ही मूल्य है। इस प्रकार (१) श्रम (२) वस्तु (३) रुपया—यह तीनों चीजें तीन रूप में दिखाई देते हुए भी वस्तुतः एक ही पदार्थ है।

दुनिया में रुपये से मनोवांछित सामग्री मिल सकती है। इसका अर्थ यह है कि हम अपना श्रम दूसरों को देते हैं और दूसरे अपना श्रम हमें देते हैं। इस देन-लेन से ही दुनिया का कारोबार चल रहा है। अर्थात् यों कहिए कि एक-दूसरे के सहयोग से सुदृढ़ आधार पर संसार की समस्त प्रणाली टिकी हुई है। यदि यह प्रणाली टूट जाए, तो मनुष्य को फिर आदिम युग में लौटना पड़ेगा। गुफाओं में नंगधड़ंग रहकर कंदमूल, फलों पर निर्वाह करना पड़ेगा। वर्तमान समय तक हुई सारी प्रगति का लोप हो जायेगा।

धन अर्थात् श्रम का परिवर्तन—सहयोग भली-भाँति प्रचलित है। वह हमारे जीवन का एक अंग बन गया है। अपने श्रम एवं धन के बदले में हम विद्वानों, डॉक्टरों, वकीलों, दक्ताओं, इंजीनियरों, कलाकारों, मजदूरों का सहयोग जितने समय तक चाहे उतने समय तक ले सकते हैं। इसी प्रकार इच्छित वस्तुएँ भी मनचाही मात्रा में ले सकते हैं। यह राहयोग प्रणाली व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर चलती है। इस प्रणाली से हम सब अपना जीवन धारण किये हुए हैं और सांसारिक कार्य चला रहे हैं।

जीवनयापन में परस्पर सहयोग की धन के आधार पर एक प्रणाली बन गई है। इससे बहुत हद तक जीवन क्रम चल भी जाता है। परंतु जो वस्तुएँ पैसे के परिवर्तन से प्राप्त हो सकती हैं केवल मात्र उनसे ही मनुष्य की तुष्टि नहीं हो सकती, क्योंकि धन भौतिक पदार्थ हैं, उससे भौतिक वस्तुएँ ही प्राप्त होती हैं। मनुष्य को जितना भाग भौतिक है, इससे कहीं अधिक भाग आध्यात्मिक है, उसे आध्यात्मिक वस्तुएँ भी चाहिए। आत्मीयता एक ऐसा

आध्यात्मिक पदार्थ है, जिसका मूल्य भौतिक पदार्थों से असंख्य गुना है। मनुष्य उसे सबसे अधिक चाहता है, उसकी सबसे अधिक इच्छा करता है और उसे ही प्राप्त करके वह तृप्त होता है।

जिन व्यक्तियों में आपस में आत्मीयता का भाव रहता है, उनमें एक-दूसरे के लिए असाधारण आकर्षण रहता है। एक-दूसरे का हित चाहते हैं, समृद्धि चाहते हैं, उन्नति चाहते हैं, सुख चाहते हैं, सहायता के लिए तैयार रहते हैं, भूलों और कमजोरियों को उदारतापूर्वक सहन कर लेते हैं तथा मुसीबत के वक्त अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु यहाँ तक कि प्राण तक देने को तैयार रहते हैं। रुपये से चीजें मिल सकती हैं आत्मीयता नहीं मिल सकती। वेश्या का रूप यौवन और हाव-भाव पैसे से खरीदा जा सकता है, पर पतिव्रता पत्नी की-सी वफादारी और आत्मीयता विपुल संपत्ति देकर भी नहीं खरीदी जा सकती। बड़े-बड़े दिमाग पैसे के लिए अपनी सेवाएँ दे सकते हैं, किंतु आंतरिक वफादारी कितनी ही संपत्ति देने पर भी नहीं मिल सकती। चापलूस, खुशामदी, मधुरभाषी, ठग या भाँड़ प्रकृति के दरबारी लोग, धनियों की तोंद के आस-पास जोंक की तरह चिपके रहते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। पर जब स्वार्थ सिद्धि में बाधा आती है, कोई लाभ नहीं होता, तो जैसे मरे बैल को छोड़कर कलीलें भाग जाते हैं वैसे ही वे भी भाग जाते हैं। लाभ की आशा में विघ्न पड़ना यही एक कारण नीच पुरुषों के लिए शत्रुता का बहुत बड़ा कारण बन जाता है। आत्मीयता एक ऐसा आध्यात्मिक सात्त्विक पदार्थ है, जो राजसिकता या तामसिकता से लाभ या भय से प्राप्त नहीं हो सकता।

दो हृदयों का जहाँ एकीकरण होता है, जहाँ सच्चे हृदय से दो मनुष्य आपस में आत्मभाव, अपनापन, स्थापित करते हैं, वहाँ मैत्री का बीज जमता है। जब किसी मनुष्य को यह पूरी तरह विश्वास हो जाता है कि अमुक मनुष्य सच्चे रूप से मेरे प्रति आत्मीयता रखता है, मेरी कमजोरियों को जानते हुए भी उदार

दृष्टिकोण रखता है, मेरी उन्नति में सहायक, सुख-दुःख में साथी और आपत्ति में ढाल-तलवार का काम देता है तो उसके प्रति अंतस्तल में प्रेम उत्पन्न होता है। दो हृदयों में एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता होना ही मैत्री है। ऐसी मैत्री इस लोक की एक बहुमूल्य संपत्ति हैं। जैसे—धन, विद्या, स्वास्थ्य, चतुरता, कीर्ति इस लोक की प्रधान संपत्तियाँ है वैसे ही मैत्री भी एक बहुमूल्य संपत्ति है। मैत्री की महिमा अपार है। दूध और पानी की मैत्री प्रसिद्ध है। एक-दूसरे को अपने में घुला-मिला लेते हैं। सुदामा और कृष्ण की मित्रता प्रसिद्ध है। सत्संग एक प्रकार की मैत्री है। गुरु और शिष्य आपस में मित्र ही तो होते हैं। सत्संग की महिमा गाते-गाते शास्त्रकार थकते नहीं, यह महिमामय सत्संग उन्हीं में होता है, जिनके हृदय आपस में एक हों। मित्रता बहुत बड़ी आकर्षण शक्ति है, वह दो व्यक्तियों को जोड़कर एक कर देने में बढ़िया सीमेंट का काम करती है।

धनी धन को और मानी मान को पाकर प्रसन्न होता है, कलाकार को कलामय वस्तुएँ देखने में रस आता है, इंद्रियाँ अपने-अपने विषय-भोगों में संतुष्ट रहती हैं। आत्मा को भी अपना स्वजातीय चाहिए। जब कोई आत्मा किसी दूसरी आत्मा का स्पर्श या आलिंगन करती है तो दोनों में असाधारण आनंद उत्पन्न होता है। एक अनुपम तृप्ति का अनुभव होता है। अमुक व्यक्ति मेरा सच्चा हितू है, आड़े वक्त काम आयेगा, मेरे लिए उसके मन में सच्चा आदर एवं आत्मभाव है। इस कल्पना से मनुष्य के अंतःकरण में एक उल्लास, आनंद, संतोष एवं साहस का आविर्भाव होता है। निर्जीव वस्तुएँ एक और एक मिलकर दो होती हैं, परंतु दो सजीव आत्माओं का सम्मिलन होने से १ और १ मिलकर ११ हो जाते हैं।

सांसारिक उतार-चढ़ाव के कारण जो प्रिय-अप्रिय घटनाएँ घटित होती हैं। मनुष्य के मन पर उनकी प्रतिक्रिया, रोष, क्रोध, क्षोभ, शोक, निराशा, भय, बेचैनी या घृणा के रूप में होती है

अथवा हर्ष, आशा, उत्साह का नशा छा जाता है। कभी-कभी इन भले या बुरे उद्वेगों की मात्रा मस्तिष्क में बहुत अधिक भर जाती है और न सोचने लायक बातें सोची जाने लगती हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य अर्ध-विक्षिप्त हो जाता है और कुछ का कुछ कर बैठता है। ऐसे समय पर सच्चे मित्रों की उपस्थिति बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। मनुष्य अपने मन के भाव उस पर प्रकट कर देते हैं, अपने मन की बातें उससे कह देता है। यह कह देने से जी बड़ा हल्का हो जाता है और उद्वेगों का आवेश शांत हो जाता है। जिसके सामने मन की हर एक कमजोरी प्रकट की जा सके और यह विश्वास रहे कि इन बातों को सुनकर, वह न तो घृणा या उपहास करेगा और वह दूसरों पर उन बातों को प्रकट करेगा, ऐसे मित्र भाग्यवानों को ही प्राप्त होते हैं। मन की सारी व्यथाएँ जिसके सामने प्रकट की जा सकती हैं और व्यवहारयोग्य समुचित सलाह, जिससे प्राप्त हो सकती है वह सच्चा मित्र है। ऐसे मित्रों का होना जीवन की एक बहुमूल्य सफलता कहना चाहिए।

मित्रता का उत्तरदायित्व—यों तो इस बनावट के युग में शिष्टाचार या स्वार्थ प्रयोजन के लिए साधारण परिचय और साधारण संबंधों को भी मित्रता कहते हैं। इस प्रकार कहने में कुछ विशेष हर्ज भी नहीं है। परंतु वास्तविक मित्रता दूसरी वस्तु है। आत्मीयता का दूसरा नाम मित्रता है। जैसा पति-पत्नी में, माता-पुत्र में, गुरु-शिष्य में, भाई-भाई में घनिष्ट आत्मभाव होता है, वैसा ही अपना मन जिन दो मित्रों में हो उसे मित्रता कहते हैं, सच्चे मित्र अपने मित्र के हानि-लाभ को अपने निजी हानि-लाभ के समान देखते हैं, उसमें समान रूप से सुख-दुःख अनुभव करते हैं और समान रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। जैसे अपनी समृद्धि में आनंद आता है, वैसी मित्र की समृद्धि में भी सच्चे मित्र को दिलचस्पी होती है।

रामायण में मित्रता के संबंध में कहा गया है—

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी। तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।।
निज दुख गिरि सम रज कर जाना। मित्र के रज दुख मेरु समाना।।
जिन्हके असमति सहज न आई। ते शठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रकटे अवगुनहिं दुरावा।।
देत लेत मन शंक न धरईं। बल अनुमान सदा हित करईं।।
विपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कहि संत मित्र गुन एहा।।
आगे कह मृदु वचन बनाई। पीछे अनहित मन कुटिलाई।।
जाकर चित अहिगति रामभाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।।

मित्रता की स्थापना के साथ-साथ एक भारी उत्तरदायित्व दोनों के सिर पर आ जाता है। वैसे पति-पत्नी दोनों सम्मिलित उत्तरदायित्व को सिर पर उठाते हैं। वैसे ही मित्रता का भी एक सम्मिलित उत्तरदायित्व होता है। पुराने समय में मित्रता की स्थापना भी एक संस्कार रूप में की जाती थी। पगड़ी पलटना या टोपी पलटना उसका मुख्य चिह्न था। दो मित्र आपस में अपनी पगडी या टोपी बदल लेते थे। इस कर्मकांड को गुरुदीक्षा या पाणिग्रहण-संस्कार जैसा पवित्र एवं जीवन भर निबाहने योग्य समझा जाता था। स्त्रियों में भी 'भायेली' या 'सखी' बनने के लिए चुनरी पलटने की प्रथा है। स्त्रियाँ आपस में अपनी चुनरी बदल लेती हैं और फिर जीवन भर भायेली, सखी या बहिन का रिश्ता निभाती हैं। इस प्रकार के सच्चे दो-चार मित्रों का होना बाजारू हजार मित्रों से बढ़कर है। बाजारू मित्रता में केवल उसी हद तक मैत्री रहती है, जहाँ तक कि दोनों के स्वार्थ एक-दूसरे से सधते हैं। इस पारस्परिक स्वार्थ साधना में तनिक-सी ढील आते ही मित्रता ढीली पड़ जाती है और यदि वह स्वार्थ-व्यापार टूट जाए तो आज की चहकती मित्रता कल साधारण परिचय मात्र रह जाती है। इस मित्रता को "व्यापारिक सहयोगियों से कलापूर्ण मधुर व्यवहार" कहा जा सकता है। परिस्थितियों ने, समान कार्यक्रम ने, स्वार्थ-साधन ने, जिन लोगों को आपस में मिला दिया है और वे

चतुर या भावुक होने के कारण अपने सामयिक साथियों के साथ अच्छा, मीठा, उदार व्यवहार करते हैं तो यह सच्ची मित्रता नहीं, बाजारू मित्रता ही कही जाएगी, क्योंकि उस परिस्थिति, कार्यक्रम या व्यापार के न रहने पर मित्रता उस रूप में कदापि न रहेगी। परंतु सच्ची मित्रता में ऐसी बात नहीं है, क्योंकि वह स्वार्थ या परिस्थितियों के कारण नहीं, स्वाभाविक प्रेम के कारण स्थापित होती है और त्यागपूर्ण आत्मीयता की आधारशिला पर वह खड़ी होती है।

स्वभाव की समानता मित्रता का मूल आधार है। कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से, जातीय दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से, विद्या की दृष्टि से असमान भले ही हों, पर जिनका स्वभाव एक-सा है, मनोवृत्तियों, इच्छा और आकांक्षाओं में समता है, वे आपस में मित्र बन सकते हैं। जिनका अंतःकरण एक स्थान पर केंद्रीभूत न होगा, स्वभाव न मिलता होगा, उनकी मित्रता न तो सुदृढ़ हो सकेगी और न स्थायी। इसलिए मित्रता की स्थापना करते समय यह देख लेना चाहिए कि हमारे बीच में स्वाभाविक समानता है या नहीं ? भीतरी वृत्तियाँ आपस में मिलती हैं या नहीं ? यदि मिलती होंगी तो मैत्री सुदृढ़ हो सकती है। कई व्यक्ति कमजोर इच्छा शक्ति वाले होते हैं। उनके विचार एवं भाव ढीले-ढाले होते हैं और प्रबल इच्छा शक्ति वालों के सामने वे झेंपकर उनकी हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं। ऐसे लोगों को बे-पेंदी का लोटा कहते हैं। जो चाहे जिसके प्रभाव से प्रभावित हो जाते हैं। जिनको अपनी कोई स्वतंत्र मति नहीं, ऐसे लोगों की मित्रता को पलटा लेते भी देर नहीं लगती। ढीले स्वभाव के लोगों की मित्रता भी ढीली ही होती है। कोई कठिन अवसर सामने आ जाने पर उसकी परीक्षा की कसौटी पर खरा उतरना कठिन है।

स्वभाव की समानता का आकर्षण दो मनुष्यों को खींचकर पास-पास ले आता है। ऐसे मनुष्य कुछ समय पास-पास रहें और उनमें मधुरता एवं उदारता का यदि बिलकुल ही अभाव न हो, तो

वे साधारणतः आपस में मित्र बन जाते हैं। जब एक-दूसरे के स्वार्थों के किसी अंश में पूरक बनते हैं, एक से दूसरे को कुछ लाभ होता है, तो यह मैत्री और भी घनी होने लगती है, परंतु पक्की मित्रता तब होती है, जब एक-दूसरे के चरित्र को विश्वसनीय मान लेते हैं। जब एक व्यक्ति को यह पता लगता है कि दूसरे व्यक्ति का भूतकाल का जीवन अविश्वस्त रहा है, उसने वचन भंग, विश्वासघात, छल, ठगी, धूर्तता एवं मायाचार किये हैं, तो उसके संबंध में अविश्वास एवं संदेह उत्पन्न होता है। वह अब भी दूसरों के साथ ठगी एवं दगा-फरेब का व्यवहार कर रहा है, तो कोई अपने मतलब के लिए उससे कितना ही मीठा व्यवहार क्यों न कर ले, पर हृदय से उसका भरोसा नहीं कर सकता। उसके संबंध में सदा ही यह आशंका बनी रहती है कि अवसर पड़ने पर वह अपने साथ भी दगा-फरेबी कर सकता, जैसा दूसरों को धोखा दिया है वैसा अपने को भी दे सकता है। ऐसे संदेहों के होते हुए सच्ची मैत्री कायम नहीं हो सकती। चोर, उठाईगीरी, गुंडे, जुआरी, नशेबाज आपस में मित्र जैसा व्यवहार करते देखे गये हैं, पर जरा-सी बात पर उनमें बिगड़ जाती है। चरित्रवान्, प्रतिज्ञा पूरी करने वाले, ईमानदार और खरे आदमियों के बीच, समान स्वभाव के आधार पर जो मैत्री स्थापित होती है, वह स्थायी होती है। ऐसे ही लोग एक-दूसरे के लिए त्याग कर सकते हैं।

मित्रों का चुनाव करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। खरे, ईमानदार, निष्कपट, चरित्रवान्, वचन के धनी, बुद्धिमान् और साहसी व्यक्तियों को ही मित्र बनाना चाहिए। इस प्रकार के संबंध ही जीवन विकास में उपयोगी हो सकते हैं। मैत्री से परस्पर दोनों ही पक्षों को लाभ होता है, परंतु होता तभी है जब वह मनुष्यता के लक्षणों वाले मनुष्यों के बीच में हो। दुश्चरित्र, बदनाम, मूर्ख, कायर, कपटी और लबार मित्र तो शत्रु से भी बुरे हैं। उनकी छाया में बैठना, उनके साथ अच्छा संपर्क रखना भी शत्रुता के समान हानिकारक होता है। उनके द्वारा जो प्रभाव पड़ेगा वह नीचे गिराने

वाला, बदनाम करने वाला और गलत रास्ते पर ले जाने वाला होगा। इसलिए ऐसे व्यक्तियों से यथासंभव बचते ही रहना चाहिए।

यह रमरण रखने की बात है कि सज्जनों की मित्रता एक अत्यंत ही मूल्यवान् संपत्ति के समान हैं। उसे वैसी ही सावधानी के साथ सँभालकर रखना चाहिए जैसे कि सोना-चाँदी या जवाहरात को सँभालकर रखते हैं। इन चीजों को यदि लापरवाही से असुरक्षित रखा जाए तो उनके खो जाने या नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। इसी प्रकार यदि मित्रता को असुरक्षित रखा जाए उसकी सुरक्षा पर पूरी सावधानी के साथ ध्यान न दिया जाए तो टूट जाने या नष्ट हो जाने का भय रहता है। मित्रता निबाहने के लिए यह भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए कि लेने की नहीं—देने की नीति पर चलेंगे। मित्र के लिए उदारता की, सहायता की, सेवा की, इच्छा रखनी चाहिए। उससे लेने का भाव कम से कम रखना चाहिए, मित्रता को तोड़ने वाले तीन कारण सबसे प्रधान हैं—(१) रुपये-पैसे का लीचड़ लेन-देन, (२) मित्र के घर की तरुण स्त्रियों में अधिक आना-जाना, (३) निरर्थक वाद-विवाद। इन तीनों बातों से जहाँ तक हो सके बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

उधार लेने और उधार देने का व्यवहार मित्रता को तोड़ने वाले प्रधान कारणों में से एक हैं। कर्ज लेना हो तो महाजन से बजारू शर्तों के अनुसार लेना चाहिए, क्योंकि हर आदमी अपने पैसे से भरपूर लाभ उठाना चाहता है, महाजन जैसे शर्तें तय कर सकता है मित्र वैसा नहीं करता। उसे ब्याज आदि का कम लाभ रहता है। दूसरे न चुकाये जाने की आशंका भी बनी रहती है। यह खीज और आशंका जब मन में रहती है तो स्वभावतः मित्रभाव घटने लगता है। इसलिए जहाँ तक हो सके मित्र से कर्ज न लेना चाहिए, यदि लेना ही पड़े तो अपने आपको इतना खरा रखना चाहिए कि चुकाये जाने के संबंध में किसी प्रकार की आशंका दूसरे के मन में न उठने पाये। जिसने कर्ज दिया है वह मित्र

संकोचवश कुछ कह नहीं सकता, जिसने कर्ज लिया है वह ढील छोड़ देता है, तो हिसाब पिछला, पुराना और गंदा हो जाता है। ऐसा लीढ खाता अक्सर मित्रता का अंत कर देने का कारण बन जाता है। लिया हुआ कर्ज कब तक चुका दिया जाएगा ? किस प्रकार चुका दिया जाए ? आदि बातें साफ-साफ बता देनी चाहिए और उस वचन का पालन करने का जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिए। किसी प्रकार यदि नियत समय पर न चुकाया जा सके, तो उसका कारण बताते हुए, नये निश्चय का ठीक समय पर प्रकटीकरण कर देना चाहिए। इस प्रकार खरा लेन-देन यदि बरता जाए, तो कर्ज के द्वारा मित्रता पर पड़ने वाले कुप्रभाव को रोका जा सकता है। साथ-साथ रहने के कारण मित्र के ऊपर अपने खर्च का बोझ न पड़ने पाये, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। सिनेमा, खेल, तमाशे, सिगरेट, पान, ताँगा सवारी आदि के खर्चे को शिष्टाचारवश एक बार एक मित्र कर दे, तो उसका बैलेंस बराबर करने के लिए दूसरी बार दूसरे को खर्च करना चाहिए। केवल मित्रता के नाम पर मित्र के पैसों से लाभ उठाना अनुचित है।

सगे पारिवारिक बहिन, भतीजा, बुआ, मौसी आदि के पवित्र रिश्तों को छोड़कर अन्य स्त्रियों से विशेषकर तरुणी स्त्रियों से केवल अत्यंत आवश्यक अवसर पर आवश्यक वार्ता संक्षिप्त रूप में समाप्त कर लेने का हमारा स्वभाव होना चाहिए। परंतु मित्र के घर में तो इस बात का विशेष रूप से ध्यान करना चाहिए कि किसी को किसी प्रकार उँगली उठाने या चरित्र संबंधी आशंका करने का अवसर न आए। मित्र के घर की तरुण स्त्रियों से अधिक वार्तालाप, उनके पास अधिक आवागमन, भेंट-उपहार, यह सब बातें अकारण मित्रता पर आघात पहुँचाती हैं। यदि कुछ भेंट उपहार, स्त्री-बच्चों को भिजवाना ही हो, तो मित्र के सामने उसकी स्वीकृति से ही होना चाहिए।

वाद-विवाद का तरीका हमारे देश में बहुत बुरा है। बातचीत शुरू होती है किसी विषय पर से, पर अंत में मैं, तू का सवाल आ

जाता है। इसलिए किसी विषय पर नम्रता, मधुरता के साथ एक-दूसरे के सम्मान की रक्षा करते हुए विचार-विनिमय होना चाहिए। व्यक्तिगत चर्चा को वाद-विवाद में नहीं घसीटना चाहिए। मित्रों के बीच में उद्दंड, निरर्थक, उग्र, कटु, व्यक्तिगत वाद-विवाद तो कभी होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि अस्त्र-शस्त्रों की भाँति कटुवचन भी एक हथियार है, जिसके प्रहार से मित्र का दिल घायल होता है और मित्रता टूट जाती है।

ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मित्र को यह आशंका न हो कि मुझसे अनुचित स्वार्थ साधन करने के लिए मित्रता की गई है। मित्रता और दुकानदारों में यही अंतर है कि दुकानदार और ग्राहक चीज की कीमत पहले ले-दे लेते हैं, मित्र उस कीमत को हृदय से तोल लेता है और सौदा होने के बाद उसकी कीमत किसी न किसी रूप से चुकाते हैं। मित्र स्वेच्छा से अपने मित्र के स्वार्थ साधन का ग्राहक बनता है, यदि उसे अपने स्वार्थ का साधन बनाया गया तो वही व्यवहार आशंका उत्पन्न करने वाला बन जाता है।

सांसारिक पदार्थों, भौतिक वस्तुओं के दुनियावी स्वार्थों में सहायता देने वाली मित्रता स्थूल मैत्री है। वह स्थूल वस्तुओं के समान ही अस्थिर एवं परिवर्तनशील होती है। पर जिस मैत्री का आधार हृदयगत भावनाओं का आदान-प्रदान है, वह सूक्ष्म एवं सात्त्विक होती है और दो हृदयों को वास्तविक तृप्ति प्रदान करती हुई चिरस्थायी होती है। दुख-सुख की मनःस्थिति में हिस्सा बटना, आवेशों और उद्वेगों का निवारण करना मित्र का आवश्यक कर्तव्य है। कई बार मनुष्य किन्हीं आवेशों, उद्वेगों में पड़ जाता है, उस अवस्था में उसे यह भान नहीं होता कि मैं इस समय एक प्रकार के मानसिक ज्वर से पीड़ित हूँ। उस उद्विग्न अवस्था में प्रायः गलत-हानिकर विचार मस्तिष्क में आते हैं और उस अवस्था में कार्य भी वैसे ही कर बैठता है। इस स्थिति में सच्चा मित्र ही वह गुरु है, जो मित्र के हृदयस्तल को स्पर्श करके उसे वास्तविक

स्थिति का ज्ञान कराते हुए मानसिक स्वस्थता की समतल भूमि पर ला सकता है।

हर मनुष्य में कमजोरियाँ होती हैं, उसके चरित्र में दोष पाये जाते हैं। कुछ छिपाने योग्य बातें होती हैं। जिन सिद्धांतों का वह प्रत्यक्षतः समर्थन करता है, परीक्षा रूप में चुपके-चुपके उनसे विपरीत भी काम करता हैं। इस तरह की गुप्त बातें कुछ न कुछ हर व्यक्ति के संबंध में होती है। उन्हें सार्वजनिक रूप से प्रकट किया जाए तब तो उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा नष्ट होती है और समाज में घृणा का पात्र बनकर बदनाम होता है। यदि उन गुप्त बातों को वह अपने मन में ही छिपाये बैठा रहे, तो मनोविज्ञानशास्त्र की दृष्टि में इसका उसके स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव पड़ेगा। वह किसी नासूर, भगंदर, कुष्ठ, बवासीर, संग्रहणी, दमा सरीखे चिरस्थायी रोग का शिकार हो सकता है या स्मरणशक्ति का नाश, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, हृदय की धड़कन, दुःस्वप्न दीखना जैसे मानसिक रोग से ग्रस्त हो सकता है। मनोविज्ञान शास्त्र के आचार्यों की चिकित्सा प्रणाली में 'मानसिक जुलाब' को सर्वोपरि आवश्यकता बताई है। वे कहते हैं कि पेट का जुलाब, इंद्रिय जुलाब, रक्त का जुलाब (फस्द खोलना, सिंगी जाक आदि) आदि जुलाबों से मानसिक जुलाब का महत्त्व बहुत अधिक है। अगर रोगी या अस्वस्थ व्यक्ति अपने जीवन भर के सारे पापो, दोषों, बुराइयों, चोरियों, कुकर्मों का सच्चा-सच्चा हाल अपने किसी मित्र पर प्रकट कर दे और एक भी बात छिपाकर न रखे, तो उसका मन बहुत ही हलका हो जाता है और शारीरिक तथा मानसिक व्यथाओं से छुटकारा पाने में इतनी सहायता मिलती है, जिसका मुकाबला संसार की कोई कीमती से कीमती औषधि नहीं कर सकती। सच्चे मित्र के सामने अपनी बुराइयों, कमजोरियों और भूलों को मनुष्य कह सकता है। वह बिना घृणा किये उन्हें सुन सकता है और गुप्त रख सकता है। इस प्रकार कमजोरियों और बुराइयों को गुप्त रखने से मनुष्य के मन पर जो अत्यंत हानिकर भार पड़ता है, वह विश्वसनीय साथी को सुना देने से अनायास ही हट जाता है। वे सच्चे मित्र जो आपस में

एक-दूसरे की गुप्त बातें कह-सुनकर मन का भार हलका कर लेते हैं वास्तव में एक-दूसरे के लिए जीवन मूरि के समान उपयोगी है। जिन परिस्थितियों में भूलें हुई उनका वास्तविक कारण जानकर उनके निराकरण का वास्तविक उपाय भी वह मित्र बता सकता है। गुरु के प्रति आदर भाव की मात्रा अधिक होने के कारण लज्जा या शिष्टाचारवश वे सब बातें नहीं कहीं जा सकतीं, पर सच्चा मित्र आसानी से जान लेता है और उन कमजोरियों को दूर करने का उचित एवं सुलभ मार्ग बता सकता है। इस प्रकार वह गुरु का काम दे सकता है। श्रीकृष्ण जी अर्जुन के सच्चे मित्र थे, उन्होंने उसके गुरु का काम भी किया। ऐसे सच्चे मित्रों के लिए सखा' शब्द का प्रयोग करना उपयुक्त है।

संसार में धन, संपत्ति, विद्या, ख्याति बढ़ाने के अनेक साधन हैं। उपदेशकों और धर्म चर्चा करने वालों की भी कमी नहीं है। परंतु हृदय के भीतरी कोने को जो स्पर्श कर सके, सहानुभूति, सहृदयता और आत्मीयता के साथ मित्र के दोषों को सुन सके, साथ ही उन कमजोरियों को बढ़ावे नहीं, वरन् धीरे-धीरे उन्हें घटाने का निरंतर प्रयत्न करते रहें और अंत में अपने मित्र को आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ाते-बढ़ाते आत्मशांति तक ले पहुँचे, ऐसे सखा कम हैं। जिन भाग्य वालों को सच्चे सखा मिल जाते हैं, उन्हें जीवन का सच्चा लाभ प्राप्त होता है।

मित्रता-निबाहना– सच्ची मित्रता आत्मीयता का, अपनेपन का भाव होता है। जहाँ अपनापन न हो वहाँ मैत्री भी विडंबना ही समझनी चाहिए। मनुष्य अपनों के प्रति उदार होता है, आपने प्रिय परिजनों की प्रसन्नता और हित कामना का उसे ध्यान रहता है। मित्र के लिए भी रहना चाहिए। यह भाव है या नहीं, इसकी सबसे प्रधान परीक्षा यह है कि पीठ पीछे वह उसके संबंध में कैसे भाव व्यक्त करता है ? सामने, एकांत में निंदा, आलोचना, भर्त्सना वह कर लेगा, पर पीठ पीछे प्रशंसा ही करेगा। दूसरों के मन पर मित्र के व्यक्तित्व का अच्छा चित्र अंकित करना मित्र का कर्तव्य है, क्योंकि प्रतिष्ठा भी सोने-चाँदी की

तरह एक प्रकार की संपत्ति है। किसी को रुपये का नुकसान पहुँचाना या उसकी प्रतिष्ठा नष्ट करना एक समान है। जिसकी समाज में प्रतिष्ठा घट जाएगी, उसे दूसरों से सहयोग कम मिलेगा, फलस्वरूप उसे आर्थिक हानि होगी। कोई आदमी अपने सच्चे हितैषी को अकारण धन की हानि पहुँचाना पसंद नहीं करता, वैसे ही सच्चा मित्र भी उसकी प्रतिष्ठा को कम नहीं कर सकता। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में **"गुण प्रकटै अवगुणहि दुरावा"** उसकी प्रधान नीति होगी। मित्र के गुणों को प्रकाश में लाना, उसके अवगुणों पर समाज में पर्दा डालना, पर एकांत रूपेण सुधारने का प्रयत्न करना मित्र का कर्तव्य है।

आजकल एक फैशन-सा चल पड़ा है कि मुँह के सामने मीठी-मीठी खुशामदी बातें बनाना और पीछे-पीछे निंदा-उपहास छिद्रान्वेषण या मखौल करना एवं गुप्त भेदों तथा कमजोरियों को फैलाते फिरना, इस प्रकार का जिनका स्वभाव हो, उन्हें कपटी मित्र कहना चाहिए। ऐसे आस्तीन के साँप लाभ कम पहुँचाते हैं, हानि की उनसे अधिक संभावना रहती है। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए। जहाँ परायेपन का भाव होता है, जिसके लिए हृदय में स्थान नहीं होता, उसकी निंदा प्रचारित की जा सकती है, परंतु जिसे अपना मान लिया जाए, उसके सुधार के लिए तो प्रयत्न किया जाता है, पर बदनाम नहीं किया जाता।

जिस प्रकार पीठ पीछे निंदा करना परायेपन का, कपट भाव का चिह्न है, वैसे ही चापलूसी, ठाकुर सुहाती एवं खुशामद भरी बातें करके रिझाना भी धूर्तता है। ऐसी धूर्तता केवल ऐसे स्वार्थी लोग किया करते हैं, जिन्हें अपना मतलब गाँठना होता है। ऐसे लोग मुँह के सामने तरह-तरह के भाव बनाकर तरह-तरह के प्रसंगों में नानाविधि प्रशंसा किया करते हैं, ऐसी खुशामद सुनने वाले को कुछ प्रसन्नता तो होती है, पर उसका मिथ्या अभिमान बढ़ने लगता है। राजा, रईस, अमीर, उमराव ऐसी ही खुशामदों द्वारा बुरी तरह बर्बाद किये जाते हैं, वे अपने दरबारी लोगों द्वारा

दिन-रात अपना बड़प्पन सुनते-सुनते एक प्रकार से 'हिप्नोटाइज' हो जाते हैं और अपने को वैसा ही मानने लगते हैं। वस्तुस्थिति छोटी या हलकी होने पर भी जब मनुष्य अपने को बड़ा मान बैठता है, तो उसकी आगे बढ़ने की प्रगति रुक जाती है, अहंकार बढ़ जाता है, साथ ही अनेक भ्रांत धारणाएँ बन जाने के कारण उसका मन विकृत हो जाता है, विचारवानों की दृष्टि में ऐसे मनुष्य बहुत ही निम्न कोटि के ठहरते हैं। खुशामदी लोग केवल प्रशंसा ही करते हों सो बात नहीं, वरन् उसकी उचित-अनुचित हर एक धारणा इच्छा या आकांक्षा का समर्थन भी करते हैं। अधिकांश भोगेच्छाएँ, अनीति मूलक कामनाएँ ही मनुष्य के हृदय में अधिक उठती हैं, खुशामदी लोगों द्वारा उनको प्रोत्साहन एवं पोषण दिया जाता है। हम देखते हैं कि भले घरों के कितने ही लड़के ऐसे लोगों के कुसंग में पड़कर मद्यपान, व्यभिचार तथा अन्य प्रकार के दुर्व्यसनों में पड़कर बर्बाद हो गए। तालाब सूख जाने पर पखेरू उसे छोड़कर उड़ जाते हैं, उसी तरह ये खुशामदी लोग भी जब देखते हैं, उनका मित्र (?) छूँछ हो गया, उसमें रस नहीं रहा, तो उसे छोड़कर दूर भाग जाते हैं। फिर उससें साधारण संबंध कायम रखना भी उन्हें पसंद नहीं होता, उलटे शत्रुता करने लगते हैं।

पीछे निंदा करना और सामने ठाकुर सुहाती कहना कपटमयी मित्रता के दो प्रधान लक्षण हैं। सच्चा मित्र पीछे-पीछे अपने मित्र के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित बनाने का प्रचार करता है और सामने उसे उचित मार्ग पर ले जाने की खरी सलाह देता है। एक दिन में सुधरने की वह असंभव आशा नहीं करता और न जिद्द-दुराग्रह के साथ अपनी इच्छा उसके ऊपर लाद देता है, वरन् धीरे-धीरे मधुर व्यवहार द्वारा उसके अंतःकरण में ऐसे संस्कारों का आरोपण करता है, जिससे उसकी कमजोरियाँ स्वयमेव दूर होती जाती हैं और एक दिन वह अपने सभी प्रधान दोषों से मुक्त हो जाता है। मित्र के मनोरंजन, हास्य-विनोद, साहचर्य, आवागमन में साथ रहते हुए प्रसन्नता होनी चाहिए, छोटे-मोटे खान-पान जैसी भेंट-उपहारों का आदान-प्रदान

करने में संकोच न होना चाहिए। मित्र को समृद्ध, संपन्न एवं उन्नति करने वाले लाभदायक कामों में मदद देनी चाहिए और जब उसके ऊपर कोई विपत्ति टूट पड़े तो अधिक से अधिक त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह मित्रों का साधारण धर्म है। विशेष धर्म यह है कि दो आत्माएँ एक-दूसरे का आलिंगन करके आध्यात्मिक आनंद का अनुभव करें और सात्त्विक आत्मबल प्राप्त करते हुए जीवन के परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक-दूसरे को सहायता प्रदान करें।

पूरी तरह से सच्ची मित्रता का प्राप्त हो जाना बड़ा कठिन है। किन्हीं सौभाग्यशालियों को ही वैसे सखा मिलते हैं। पर इससे नीचे दर्जे के भले मानस मध्यम श्रेणी के मित्र मिल जाएँ तो भी अच्छा है। वैसी मित्रता भी उपयोगी होती है। संभव है कि किसी मित्र से भूल हो, वह उतनी सच्चाई या जिम्मेदारी न प्रकट कर सके जितनी कि सच्ची मित्रता के लिए आवश्यक है, तो भी निरुत्साहित न होना चाहिए। जो भूल दूसरे की ओर से दिखाई गई हो उसकी उपेक्षा कर देना चाहिए। उलाहने के या झगड़े के रूप में नहीं, वरन् अकेले में अत्यंत मधुर शब्दों में उसे समझा देना चाहिए कि वैसी भूल करना उचित नहीं। यह बहुत ही बुरा है कि मित्र की भूल के लिए उससे पूछा न जाए या उसे समझाया न जाए, पर पेट में बुराई की गाँठ के रूप में बाँध लिया जाए, ऐसी गाँठें जब मन में इकट्ठी होती रहती है, तो धीरे-धीरे मन-मुटाव बढ़ने लगता है और एक मित्रता टूटने का अवसर आ जाता है, इसलिए एक-दूसरे के प्रति की गई भूलों को लापरवाही के कारण हुई मानकर उपेक्षा कर देनी चाहिए और उसका कुछ प्रभाव मन पर न रहने देना चाहिए, पर यदि कोई बात ऐसी हो जिसका मन पर गहरा असर पड़ा हो, तो उसका कारण पूछ लेना चाहिए या कहा-सुनी करके मन की सफाई कर लेना चाहिए। जब सभी प्रकार के मनोगत भाव मित्र पर प्रकट किये जा सकते हैं, तो उसके प्रति संदेह उत्पन्न करने वाले भावों को भी प्रकट कर देने से छिपाने की क्या आवश्यकता है ? ऐसी निष्कपटता और उदारता का व्यवहार रखने पर मित्रता स्थायी और एकसार बनी रहती है।

मित्रभाव बढ़ाने के लिए हमें यह प्रतीक्षा न करनी चाहिए कि दूसरे लोग अपनी ओर से हमसे मित्रता स्थापित करने के अवसर उपस्थित करें। वरन् जिन लोगों के साथ अपने व्यापारिक या सामाजिक क्षेत्रों में अच्छे संबंध हैं, उनमें से कुछ भले, विवेकशील और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चुन लेना चाहिए। उनके साथ आत्मीयता का व्यवहार आरंभ कर देना चाहिए। कोई सहयोग का, भेंट-उपहार का, सलाह का, समय देने का, कठिनाई में हाथ बटाने का अवसर आये तो उसे बिना चूके अपना सहयोग देना चाहिए। मन, वचन एवं कार्य द्वारा किसी के द्वारा आत्मीयता का व्यवहार होते हुए जब देखा जाता है तो मन बरबस उधर खिंच जाता है। लगातार बार-बार आत्मीयता के परिचय अपनी ओर से उपस्थित करने पर दूसरा भी वैसा करने को विवश होता है। यह सहयोग कुछ समय तक लगातार चलता रहे, एक-दूसरे को अपनी सद्भावनाओं का आदान-प्रदान करते रहें तो संबंध सुदृढ़ एवं स्थायी हो जाते हैं और मित्र-भाव बढ़ जाता है। अपने से जो किसी भी दृष्टि से अधिक बड़े हैं, उनकी योग्यता एवं महत्ता का प्रभावशाली छाया ग्रहण करने के लिए उनसे मित्र भाव बढ़ाना आवश्यक है। इसी प्रकार जो अपने से छोटे हैं, उन्हें अपना सहयोग देकर ऊँचा उठाने की मानवतामयी आकांक्षाओं के साथ मित्र बनाना चाहिए। मित्रता बड़ों से और छोटों से दोनों में ही समान रूप से उपयोगी है। बड़े लोग अपनी कृपा से हमें ऊँचा उठाते हैं और छोटे लोग सेवा-सहायता करने का अवसर देकर हमारी सात्त्विकता को, परमार्थता को जाग्रत् और चरितार्थ होने का स्वर्ण सुयोग प्रदान करते हैं। बड़ों की कृपा प्राप्त करके जैसे इहलोक और परलोक की संपदा मिलती है वैसी ही श्री समृद्धि छोटों की सेवा-सहायता से भी उपलब्ध होती है। इसलिए छोटे और बड़े का भेद-भाव न करके सज्जनता का ध्यान रखकर मित्रता का चुनाव करते समय रखना चाहिए।

मैत्री निःस्वार्थ होनी चाहिए। दो आत्माओं की एकता का जो आध्यात्मिक आनंद है। असल में वही मित्रता का सबसे बड़ा स्वार्थ

है। लोग संपत्ति को प्राप्त करके सुख अनुभव करते हैं, चेतन आत्मा को जड़ संपत्ति की समीपता से भी कुछ सुख मिलता है, परंतु चेतन आत्मा को दूसरी स्वजातीय चेतन आत्मा का सान्निध्य प्राप्त करके जो सुख मिलता है, वह अवर्णनीय है। परमात्मा में आत्मा को मिलाकर योगीजन परमानंद प्राप्त करते हैं, परंतु आत्मा में आत्मा को मिलाकर साधारण मनुष्य भी एक विशेष आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। जिन पति-पत्नी में पूर्णरूप से आत्मा का केंद्रीकरण हो जाता है, वे जानते हैं कि उनको जीवन की प्रत्येक तरंग कितनी रसमयी होती है? प्रेम को उपनिषदों ने 'परमात्मा' कहा है। श्रुति कहता है कि 'रसो वै सः' अर्थात् प्रेम ही परमात्मा है। भक्ति द्वारा, प्रेम द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त किया जाता है। इस प्रेम की विकसित करने की आरंभिक सीढ़ी मैत्री है। दार्शनिक कारलाइल ने कहा है "जो सच्ची मित्रता करने में सफल नहीं हुआ, वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।" सांसारिक सुख-दुःख में साझीदार बनना, उन्नति के पथ में सहायक बनाना ही मैत्री का लाभ नहीं है, वरन् आध्यात्मिक विकास उसका प्रमुख उद्देश्य है। गुरु भक्ति को योगशास्त्रों में अत्यधिक महत्त्व दिया है। गुरु को ईश्वर की बराबर समझकर उसकी मन, कर्म और वचन से भक्ति करने का आदेश दिया है, इसका रहस्य यह है कि पहले हम मनुष्य से सच्ची निःस्वार्थ पवित्र-आध्यात्मिक मित्रता करें, जब वह जमने लगेगी, परिपक्व होने लगेगी, तो ईश्वरीय प्रेम अपने आप उपलब्ध हो जायेगा। आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु भक्ति की, गृहस्थी क्षेत्र में दांपत्य प्रेम की अधिक महिमा है। सामाजिक क्षेत्र में भी सन्मैत्री का वैसा ही स्थान है। जिसे कुछ थोड़े से भी सच्चे मित्र उपलब्ध हैं, वह धन्य है।

हर एक मित्रता करने वाले को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मित्रता का उद्देश्य 'आत्मसुख' है। उसे व्यापार या भिक्षावृत्ति न मान लेना चाहिए। अमुक व्यक्ति से हमारी मित्रता है, इसलिए उससे अमुक-अमुक लाभ हम उठाएँगे, ऐसी कल्पनाएँ न बाँधनी चाहिए। जो ऐसी आशा बाँधते हैं वे मित्र नहीं, व्यापारी या

भिक्षुक हैं। जो मित्रों की आशा पर अपने प्रयत्न छोड़ देते हैं। स्वयं अपने बलबूते पर अपना पतवार आप नहीं खेते उनकी नाव मँझधार में डूबती है। कभी स्पष्ट या खुले शब्दों में इस प्रकार अपनी आवश्यकता मित्र के सामने प्रकट न करनी चाहिए कि उसे पूरे न कर सकने पर स्वयं दुख हो या मित्र को शर्मिंदगी उठानी पड़े।

यदि अच्छे व्यक्तियों का संग प्राप्त न हो, तो बिना संग के रहना अच्छा, पर कुसंग से, दुष्ट लोगों की समीपता से तो सदा ही दूर रहना चाहिए। साधारण संबंधों को भी मधुर व्यवहार से हम मित्रता जैसा बना सकते हैं। मधुर वार्तालाप और उदार व्यवहार से सहज ही दूसरों का मन अपनी ओर आकर्षित होता है। इस प्रकार साधारण संबंधों को भी मधुर बनाकर मैत्री जैसा आनंद उपलब्ध किया जा सकता है। एक बात और भी ध्यान में रखने की है कि मित्र का समय अनावश्यक रीति से गपशप में या निरर्थक बातों में खर्च न कराया जाए, जिससे उसके आवश्यक कार्यक्रम में रुकावट हो, जीविका में बाधा पड़े या उसके घर वालों को कष्ट हो, इसी प्रकार मित्रता के नाम पर किसी के पैसे खर्च कराने से भी सतर्क रहना चाहिए क्योंकि इन सब बातों से मित्रता कमजोर पड़ने लगती है और एक दिन उसके टूटने का अवसर आ जाता है।

अच्छे मित्र न मिलें तो उत्तम ज्ञानवर्धक, जीवन को ऊँचा उठाने वाली अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिए। पुस्तकों के माध्यम द्वारा हम संसार के बड़े-बड़े महापुरुषों से सत्संग कर सकते हैं, उनके अनुभव और विचारों से लाभ उठा सकते हैं। पुस्तकों में ज्ञान का अपार भंडार छिपा पड़ा है, उनमें असंख्य उद्योगी, आदर्श व्यक्तियों के अनुभव दबे पड़े हैं उन्हें हृदयंगम करके भी हम मित्रता के लाभों को उठा सकते हैं। सच्ची संगति का, सच्ची मित्रता का महत्त्व अपार है। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में उसकी महिमा अनिर्वचनीय है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।।

□ □

दूसरों को अपना बनाने की कला

एक महापुरुष का कथन है—"मुझे बोलने दो, मैं विश्व को विजय कर लूँगा।" सचमुच 'वाणी, से अधिक कारगर हथियार और कोई इस दुनिया में नहीं है। जिस आदमी में ठीक तरह उचित रीति से बातचीत करने की क्षमता है, समझिये कि उसके पास एक मूल्यवान् खजाना है। दूसरों पर प्रभाव डालने का प्रधान साधन वाणी है। देन-लेन, व्यवहार, आचरण, विद्वता, योग्यता आदि का प्रभाव डालने के लिए समय की, अवसर की, क्रियात्मक प्रयत्न की आवश्यकता होती है, पर वार्तालाप एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा बहुत ही स्वल्प समय में दूसरों को प्रभावित किया जा सकता है।

बातचीत करने की कला में जो निपुण हैं, वह असाधारण संपत्तिवान् हैं। योग्यता का परिचय वाणी के द्वारा प्राप्त होता है। जिस व्यक्ति का विशेष परिचय मालूम नहीं है, उससे कुछ देर बातचीत करने के उपरांत जाना जा सकता है कि वह कैसे आचरण का है, कैसे विचार रखता है, कितना योग्य है, कितना ज्ञान और अनुभव रखता है। जो दूसरों के ऊपर अपनी योग्यता प्रकट करता है, ऐसे प्रमुख मनुष्य को बहुत ही सावधानी के साथ बरता जाना चाहिए। कई ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों को हम जानते हैं, जो परीक्षा करने पर उत्तम कोटि का मस्तिष्क, उच्च हृदय और दृढ़ चरित्र वाले साबित होंगे, परंतु उनमें बातचीत करने का ढंग न होने के कारण सर्व साधारण में मूर्ख समझे जाते हैं और उपेक्षणीय दृष्टि से देखे जाते हैं। उनकी योग्यताओं को जानते हुए भी लोग उनसे कुछ लाभ उठाने की इच्छा नहीं करते। कारण यह कि बातचीत के छिछोरपन से लोग झुँझला जाते हैं और उनसे दूर-दूर बचते रहते हैं।

अनेक व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं, जो इतने योग्य नहीं होते जितना कि सब लोग उन्हें समझते हैं। वाणी की कुशलता के

द्वारा वे लोग दूसरों के मन पर अपनी ऐसी छाप बिठाते हैं कि सुनने वाले मुग्ध हो जाते हैं। कई बार योग्यता रखने वाले लोग असफल रह जाते हैं और छोटी कोटि के लोग सफल हो जाते हैं। प्रकट करने के साधन ठीक हों तो कम योग्यता को ही भली प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है और उनके द्वारा बहुत काम निकाला जा सकता है। विद्युत् विज्ञान के आचार्य जे० पी० राव का कथन है कि उत्पादन केंद्र में जितनी बिजली उत्पन्न होती है, उसका दो-तिहाई भाग बिना उपयोग के ही बर्बाद हो जाता है। पावर हाउस में उत्पन्न हुई बिजली का एक-तिहाई भाग ही काम में आता है। वे कहते हैं कि अभी तक जो यंत्र बने हैं, वे अधूरे हैं; इसलिए आगे ऐसे यंत्रों का आविष्कार होना चाहिए, जो उत्पादित बिजली की बर्बादी न होने दें, जिस दिन इस प्रकार के यंत्र तैयार हो जाएँगे, तब बिजलीघरों की शक्ति तिगुनी बढ़ जाएगी, खर्च तिहाई रह जाएगा।

करीब-करीब ऐसी ही बर्बादी मानवीय योग्यताओं की होती है। अधूरे विद्युत् यंत्रों के कारण दो-तिहाई बिजली नष्ट हो जाती है, बातचीत की कला से अनभिज्ञ होने के कारण दो-तिहाई से भी अधिक योग्यताएँ निकम्मी पड़ी रहती हैं। यदि इस विद्या की जानकारी हो तो तिगुना कार्य संपादन किया जा सकता है। जितनी सफलता आप प्राप्त करते हैं, उतनी तो तिहाई योग्यता रखने वाला भी प्राप्त कर सकता है। आप अपनी शक्तियाँ बढ़ाने के लिए घोर परिश्रम करें, किंतु उनसे लाभ उठाने में असमर्थ रहें, तो वह उपार्जन किस काम का ? उचित यह है कि जितना कुछ पास में है उसका ठीक ढंग से उपयोग किया जाए। जिन्हें मूर्ख कहा जाता है या मूर्ख समझा जाता है वास्तव में वे उतने अयोग्य नहीं, जितना कि ख्याल किया जाता है। उनमें भी बहुत अंशों तक बुद्धिमत्ता होती है, परंतु जिस अभाव के कारण उन्हें अपमानित होना पड़ता है—वह अभाव है—"बातचीत की कला से परिचित न होना।"

मनोगत भावों को भले प्रकार, उचित रीति से प्रकट कर सकने की योग्यता एक ऐसा आवश्यकीय गुण है, जिसके बिना जीवन विकास में भारी बाधा उपस्थित होती है। आपके मन में क्या विचार हैं, क्या इच्छा करते हैं, क्या सम्मति रखते हैं, जब तक यह प्रकट न हो, तब तक किसी को क्या पता चलेगा ? मन ही मन कुड़कुड़ाने से दूसरों के संबंध में भली-बुरी कल्पनाएँ करने से कुछ फायदा नहीं, आपको जो कठिनाई है, जो शिकायत है, जो संदेह है, उसे स्पष्ट रूप से कह दीजिए। जो सुधार या परिवर्तन चाहते हैं उसे भी प्रकट कर दीजिए। इस प्रकार अपनी विचारधारा को जब दूसरों के सामने रखेंगे और अपने कथन का औचित्य साबित करेंगे, तो मनोनुकूल सुधार हो जाने की बहुत कुछ आशा है।

भ्रम का, गलतफहमी का, सबसे बड़ा कारण यह है कि झूठे संकोच की झिझक के कारण लोग अपने भावों को प्रकट नहीं करते, इसलिए दूसरा यह समझता है कि आपकी कोई कठिनाई या असुविधा नहीं है, जब तक कहा न जाए तब तक दूसरा व्यक्ति कैसे जान लेगा कि आप क्या सोचते हैं और क्या चाहते हैं ? अप्रत्यक्ष रूप से, सांकेतिक भाषा में विचारों को जाहिर करना केवल भावुक और संवेदनाशील लोगों पर प्रभाव डालता है, साधारण कोटि के हृदयों पर उसका बहुत ही कम असर होता है, अपनी निजी गुत्थियों में उलझे रहने के कारण, दूसरों की सांकेतिक भाषा को समझने में वे या तो समर्थ नहीं होते या फिर थोड़ा ध्यान देकर फिर उसे भूल जाते हैं। अक्सर बहुत जरूरी कामों की ओर पहले ध्यान दिया जाता है और कम जरूरी कामों को पीछे के लिए डाल दिया जाता है। संभव है आपकी कठिनाई या इच्छा को कम जरूरी समझकर पीछे डाला जाता हो, फिर कभी के लिए टाला जाता हो, यदि सांकेतिक भाषा में मनोभाव प्रकट करने से काम चलता न दिखाई पड़े, तो अपनी बात को

स्पष्ट रूप से नम्र भाषा में कह दीजिए, उसे भीतर ही भीतर दबाये रहकर अपने को अधिक कठिनाई में मत डालते जाइए।

संकोच उन बातों के कहने में होता है, जिनमें दूसरों की कुछ हानि की या अपने को किसी लाभ की संभावना होती है। ऐसे प्रस्ताव को रखते हुए झिझक इसलिए होती है कि अपनी उदारता और सहनशीलता को धब्बा लगेगा, नेकनीयती पर आक्षेप किया जाएगा या क्रोध का भाजन बनना पड़ेगा। यदि आपका पक्ष उचित, सच्चा और न्यायपूर्ण है, तो इन कारणों से झिझकने की कोई आवश्यकता नहीं है, हाँ, अनीतियुक्त माँग कर रहे हों तो बात दूसरी है। यदि अनुचित या अन्याययुक्त आपकी माँग नहीं है, तो अधिकारों की रक्षा के लिए निर्भयतापूर्वक अपनी माँग को प्रकट करना चाहिए। हर मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है कि मानवता के अधिकारों को प्राप्त करें, और उनकी रक्षा करें केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं, वरन् इसलिए भी कि अपहरण और कायरता, इन दोनों घातक तत्त्वों का अंत हो।

षड्रिपु आध्यात्मिक संपत्तियों को दाबते चले आते हैं, असुरत्व बढ़ रहा है और सात्त्विकता न्यून होती जा रही है। आत्मा क्लेश पा रही है और शैतानियत का शासन प्रबल होता जाता है, क्या आप इस आध्यात्मिक अन्याय को सहन ही करते रहेंगे ? यदि करते रहेंगे, तो निस्संदेह पतन के गहरे गर्त में जा गिरेंगे। ईश्वर ने सद्गुणों की, सात्त्विक वृत्तियों की, सद्भावनाओं की, अमानत आपको दी है और आगाह किया है कि यह पूँजी सुरक्षित रूप से अपने पास रहनी चाहिए यदि उस अमानत की रक्षा न की जा सकी और चोरों ने, पापियों ने उस पर कब्जा कर लिया तो ईश्वर के सम्मुख जवाबदेह होना पड़ेगा, अपराधी बनना पड़ेगा।

ठीक इसी तरह बाह्य जगत् में मानवीय अधिकारों की अमानत ईश्वर ने आपके सुपुर्द की है। इसको अनीतिपूर्वक किसी को मत छीनने दीजिए। गौ का दान कसाई को नहीं, वरन् ब्राह्मण को होना चाहिए। अपने जन्म सिद्धि अधिकारों को यदि बलात्

छिनने देते हैं, तो यह गौ का कसाई को दान करना हुआ। यदि स्वेच्छापूर्वक सत्कार्यों में अपने अधिकारों का त्याग करते हैं, तो वह अपरिग्रह है, त्याग है, तप है। आत्मा, विश्वात्मा का एक अंश है। एक अंश में जो नीति या अनीति की वृद्धि होती है, वह संपूर्ण विश्वात्मा में पाप-पुण्य को बढ़ाती है, यदि आप संसार में पुण्य की, सदाशयता की, समानता की, वृद्धि चाहते हैं, तो इसका आरंभ अपने ऊपर से ही कीजिए। अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जी तोड़ कोशिश करिए, इसके मार्ग में जो झूठा संकोच, बाधा उपस्थित करता है, उसे साहसपूर्वक हटा दीजिए।

दबंग रीति से, निर्भयतापूर्वक खुले मस्तिष्क से बोलने का अभ्यास करिए। सच्ची और खरी बात कहने की आदत डालिए। जहाँ बोलने की जरूरत है, वहाँ अनावश्यक चुप्पी मत साधिए, ईश्वर ने वाणी का पुनीत दान मनुष्य को इसलिए दिया है कि अपने मनोभावों को भली प्रकार प्रकट करें, भूले हुओं को समझावें, भ्रम का निवारण करें और अधिकारों की रक्षा करें। आप झेंपा मत कीजिए, अपने को हीन समझने या मुँह खोलते हुए डरने की कोई बात नहीं है। धीरे-धीरे गंभीरतापूर्वक, मुसकराते हुए, स्पष्ट स्वर में, सद्भावना के साथ बातें किया कीजिए और खूब किया कीजिए, इससे आपकी योग्यता बढ़ेगी, दूसरों को प्रभावित करने में सफलता मिलेगी, मन हलका रहेगा और सफलता का मार्ग प्रशस्त होता जाएगा।

ज्यादा बकबक करने की कोशिश मत कीजिए। अनावश्यक, अप्रासंगिक, अरुचिकर बातें करना, अपनी के आगे किसी की सुनना ही नहीं, हर घड़ी चबर-चबर जीभ चलाते रहना, बेमौके बेसुरा राग अलापना, अपनी योग्यता से बाहर की बातें करना, शेखी बघारना, वाणी के दुर्गुण हैं। ऐसे लोगों को मूर्ख, मुहफट्ट और असभ्य समझा जाता हैं, ऐसा न हो कि अधिक वाचालता के कारण आप इसी श्रेणी में पहुँच जाएँ। तीक्ष्ण दृष्टि से परीक्षण करते रहा कीजिए कि आपकी बात को अधिक दिलचस्पी के साथ

सुना जाता है या नहीं, सुनने में लोग ऊबते तो नहीं, उपेक्षा तो नहीं करते। यदि ऐसा होता हो तो वार्तालाप की त्रुटियों को ढूँढ़िये और उन्हें सुधारने का उद्योग कीजिए अन्यथा बक्की-झक्की समझकर लोग आपसे दूर भागने लगेंगे।

अपने लिए या दूसरों के लिए जिसमें कुछ हित साधन होता हो, ऐसी बातें करिए। किसी उद्देश्य को लेकर प्रयोजनयुक्त भाषण कीजिए अन्यथा चुप रहिये। कड़वी, हानिकारक, दुष्ट भावों को भड़काने वाली, भ्रमपूर्ण बातें मत कहिये। मधुर, नम्र, विनययुक्त, उचित और सद्भावनायुक्त बातें करिए, जिससे दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़े, उन्हें प्रोत्साहन मिले, ज्ञान वृद्धि हो, शांति मिले तथा सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा हो। ऐसा वार्तालाप एक प्रकार का वाणी का तप है, मौन व्रत का अर्थ चुप रहना नहीं, वरन् उत्तम बातें करना है। आप वाणी यज्ञ में प्रवृत्त हो जाइये, मधुर और हितकर भाषण करने की ओर अग्रसर होते रहिये।

किसी आदमी से क्या बात करनी चाहिए ? यह सबसे पहले जानने की बात है। अपनी निजी समस्याओं के बारे में सुनने, समझने, विचार करने के लिए हर मनुष्य के पास पर्याप्त काम पड़ा हुआ है, उसे अपनी निजी समस्याएँ ही बहुत अधिक मात्रा में सुलझानी हैं। किसी को इतनी फुरसत नहीं है कि अनावश्यक बातों को सुने, समझें, सिर खपाये। यदि आप चाहते हैं कि कोई व्यक्ति आपकी बात सुनें, तो पहले उसकी निजी समस्याओं और दिलचस्पी का विषय जानिये और उसी के संबंध में आरंभ कीजिये। यदि केवल मनोरंजन के लिए, समय निकालने के लिए बातें करनी हैं, तो उसकी निजी आवश्यकताओं के बारे में, निजी सफलताओं के बारे में, निजी कठिनाइयों के बारे में शुरूआत कीजिए। मनुष्य चाहता है कि हमारे ऊपर जो कष्ट हैं, जिन कठिनाइयों का मुकाबला कर रहे हैं, उनके लिए कोई सहानुभूति प्रकट करे, जो सफलताएँ हमने प्राप्त की हैं, उनके लिए कोई प्रशंसा करे, जो काम हम करते हैं—उसके महत्त्व का वर्णन करे,

जिस जानकारी की आवश्यकता है, उसे बताएँ, जिस विषय में दिलचस्पी रखते हैं, उसे सुनाकर तृप्त करें।

यदि आप दूसरों की इच्छाओं को जानते हुए, तदनुसार वार्तालाप का विषय आरंभ करते हैं, तो उसकी दिलचस्पी बढ़ती है, अपने जरूरी काम को छोड़कर भी आपकी बातों को बहुत देर तक सुनता रह सकता है। जो प्रयोजन आप सिद्ध करना चाहते हैं, उसे एकदम प्रकट मत कीजिए, वरन् श्रोता के निजी विषय को छोड़कर उसे मन को तरंगित करिये, अपने प्रिय विषय सुनने वाले की ओर सुनने वाले की सद्भावना बहुत अधिक मात्रा में बढ़ जाती है। जिसकी सद्भावना आपकी ओर बढ़ रही है। जो अपने प्रिय विषय को श्रवण करके तरंगित हो रहा है, उसके सामने उचित और आकर्षक रीति से अपनी बात रखें, इस तरह उसे बहुत ही शीघ्र और सरलतापूर्वक अपने प्रस्ताव पर सहमत कर सकते हैं। अमेरिका का कुख्यात व्यभिचारी जान वीवर अनेक रूपवती और धनी महिलाओं को अपने चंगुल में फँसाने, नाम बदल-बदलकर विभिन्न स्थानों में अपने तैंतीस विवाह करने के अपराध में पकड़ा गया। अदालत में उसकी कार्य पद्धति प्रकट हुई। यह धूर्त न तो कुछ सुंदर था, न धनी, न किसी और योग्यता वाला। केवल एक ही योग्यता उसमें थी—'मधुर वार्तालाप'। वह स्त्रियों के रूप-यौवन की खूब प्रशंसा करता था, उनके प्रिय विषय पर वार्तालाप करता था, सफलता पर बधाई देता था, कठिनाइयों में सहानुभूति प्रकट करता था। इस प्रकार लुभाने वाली वाणी से मोहित करके उन्हें अपने साथ विवाह करने पर रजामंद कर लेता था। भोली-भाली स्त्रियों को कुमार्ग में घसीट ले जाने वाले व्यभिचारी अक्सर इसी हथियार को काम में लाते हैं। पति या सास-ननद जिनके द्वारा युवती को कुछ कष्ट मिलता है, उनकी प्रशंसा तथा उसकी निर्दोषता, सरलता, भलमनसाहत की प्रशंसा करके लुभा लेते हैं। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा सहानुभूति और

प्रशंसा की इच्छा अधिक होती है, वे अपेक्षाकृत अधिक आकर्षित होती हैं।

आप किसी को ठगने या कुमार्ग पर ले जाने के लिए अपनी पुनीत वाणी का उपयोग कदापि न कीजिए, शारदा माता का इस प्रकार दुरुपयोग करेंगे तो अंत में बहुत ही दुःखदायी परिणाम उपस्थित होगा। आप अपना दृष्टिकोण ऊँचा रखिये, ऊँचे और भले उद्देश्यों के लिए बातचीत कीजिए। परंतु स्मरण रखिये, वही वार्तालाप सफल हो सकता है, जिसमें सुनने वाला दिलचस्पी लेता है। यदि आपकी बातों में उसे अपने काम की कोई बात प्रतीत न होगी, तो वह अरुचिपूर्वक कुछ देर सुन भले ही ले, पर उससे प्रभावित जरा भी न होगा। ऐसे छूँछे और एकांगी प्रसंगों में कोई सार नहीं निकलता, कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बेकार की दाँता किटकिट करने का शौक हो, तब तो बात अलग है अन्यथा यदि कुछ लाभ की, कम से कम मैत्री वृद्धि की आशा से, वाणी विनिमय करना चाहते हैं, तो इसका ध्यान रखिए कि आरंभ दूसरे की दिलचस्पी के विषय को लेकर किया जाए।

बचे हुए समय को लोग गपशप में गुजारते हैं। अक्सर इस गपशप का विषय अश्लील या वीभत्स होता है या तो गंदी, कामुकतापूर्ण बातों से मनोविनोद किया जाता है या फिर किसी की बुराई करने का अवसर ढूँढ़ा जाता है। यदि कुछ ठीक आधार न मिले तो भी अश्लीलता या निंदा के मनगढ़ंत अवसर तैयार कर लेते हैं। मित्र मंडलियाँ अपने बहुमूल्य समय में इस प्रकार निकृष्ट कोटि के आधार पर मनोविनोद करती हैं। समय संपत्ति है, उसका इस प्रकार दुरुपयोग न होना चाहिए। मनोरंजन के लिए यात्रा के अनुभव, कौतूहलपूर्ण घटनाएँ, अद्भुत वृत्तांत, रहस्योद्घाटन आदि का सहारा लिया जा सकता है, जिससे जानकारी एवं चतुरता में वृद्धि हो तथा नीच-निंदित वृत्तियों का उभार न हो।

यह युग बहस का है। बहस से सरकारें चलाई जाती हैं, अदालतों में बहस ही प्रधान है। सभा-संस्थाओं में बहस के उपरांत

कुछ निर्णय होता है। प्रजातंत्र, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्वेच्छा सहयोग, विचार परिवर्तन एवं अधिक उचित निर्णय पर पहुँचने का एकमात्र आधार बहस है। जिस कार्य में बहुत लोगों का समावेश है, उनके बिखरे विचारों को एक स्थान पर केंद्रीभूत करने की यही एक प्रणाली है। इस युग में राज-काज से लेकर घर-गृहस्थी की व्यवस्था का संचालन बहस के आधार पर होता है या होने की अपेक्षा रखता है।

बहस के लिए जिस धैर्य की आवश्यकता है, हम लोगों में उसका बहुत ही अभाव होता है। किसी सार्वजनिक विषय पर बात-चीत करते-करते निजी प्रसंग आ जाता है और बात का बतंगड़ बनकर लड़ाई-झगड़े का वैमनस्य का, मारपीट का अवसर आ जाता है। बहुत थोड़ी देर सहिष्णुता के साथ बहस चलती है, इसके बाद आपस में एक-दूसरे के ऊपर आक्षेप होने लगते हैं, व्यक्तिगत बुराई करने लगते हैं, जिस प्रसंग पर वार्तालाप चल रहा था वह अधूरा छूट जाता है और उसके स्थान पर आपसी छिद्रान्वेषण शुरू हो जाता है। यह दिमागी कमजोरी, असहिष्णुता, कल्पना शक्ति की कमी है। इसे जितनी जल्दी हो दूर करना चाहिए। बहस करना सत्य की शोध करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। यदि आप सत्य के पुजारी हैं और उचित नतीजे पर पहुँचने की इच्छा करते हैं, बहस करने की कला का अभ्यास कीजिए।

कोई व्यक्ति छोटी उम्र का है या कम जानकारी रखता है, तो उसे यह सोचकर चुप न रह जाना चाहिए कि बड़ों के सामने किस प्रकार मुँह खोलूँ, इसमें उनका अपमान होगा या पूछने से मुझे मूर्ख-अयोग्य समझा जाएगा अथवा नेकनीयती पर कोई अविश्वास करेगा। हर मनुष्य को अपनी सम्मति प्रकट करते समय यह इत्मीनान रखना चाहिए कि मेरी सम्मति को अच्छी नीयत से प्रकट किया हुआ समझा जाएगा, कोई उलटा अर्थ न लगाया जाएगा। जब तक यह विश्वास नहीं होता, तब तक मत प्रकट

करने में झिझक होती है। ऐसी झिझक अनावश्यक है, उसे दूर कर देना चाहिए और जो कुछ कहना है, साफ-साफ, स्पष्ट स्वर में मध्यम आवाज से, निर्भीकतापूर्वक कह देना चाहिए। यदि आप ठीक अवसर पर तो झेंप के मारे कुछ कहते नहीं और पीछे-पीछे उस निर्णय की बुराई करते हैं, तो वह उचित नहीं। आपमें इतना साहस होना चाहिए कि ठीक अवसर पर अपनी बात को धैर्यपूर्वक रख सकें और दूसरों को उससे प्रभावित कर सकें।

ऐसा मत मान बैठिए कि सबसे बड़ा बुद्धिमान् मैं ही हूँ। मूर्ख लोग दुनिया में डेढ़ अकल समझते हैं, उनका ख्याल होता है कि ईश्वर ने एक अक्ल हमें दी है और शेष आधी सारी दुनिया के हिस्से में आई है। इस प्रकार की मान्यता बड़ी ही भयंकर है और लाभदायक निर्णय तक पहुँचने में भारी बाधा उपस्थित करती है। आप अकेले ही इस संसार में बुद्धिमान् नहीं हैं और लोग भी हैं। संभव है किसी विषय में आप गलती पर हों और दूसरों की राय ठीक हो। इसलिए स्थिति की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न करिये, दूसरों के विचार अधिक ठोस हैं और उनके पीछे अधिक प्रामाणिकता है, तो उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपनी भूलों को तलाश करने और उन्हें सुधारने के लिए एक विद्यार्थी की भाँति, जिज्ञासु की तरह मन को खुला रखिये। हठधर्मी से अपनी ही बात पर अड़े रहना अनुचित है, इससे कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलता, दूसरों की निगाह में आप घृणास्पद, जिद्दी ठहरते हैं और स्वयं उचित निर्णय तक पहुँचने से सत्य की शोध करने से वंचित रह जाते हैं।

दूसरे जो विचार प्रकट कर रहे हैं, उनकी नेकनीयती पर विश्वास कीजिए। यदि उनमें बदनीयती छिपी हुई दिखाई पड़े, तो भी उनकी दलील पर उसी ढंग से विवेचना कीजिये जैसे कि नेकनीयती से कही हुई बात पर की जाती है। तुनकमिजाजी, बिगड़ना, बात-बात में अपमान ख्याल करना, उचित नहीं, इससे बहस की गंभीरता नष्ट हो जाती है। दूसरों की बातचीत का ढंग

कुछ अपमानजनक, दोषपूर्ण हो, तो भी उसके बाह्य रूप पर ध्यान न देकर उसके तथ्य पर विचार करना चाहिए, सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखने से अयोग्य व्यक्तियों के बीच में भी बहस जारी रखी जा सकती है और किसी ठीक निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। सैद्धांतिक बहस में व्यक्तिगत प्रसंगों को भूलकर भी न आने देना चाहिए अन्यथा बहस का उद्देश्य नष्ट हो जाएगा और व्यर्थ की कर्कशता उठ खड़ी होगी।

आप खुद ही बातें मत करते जाइये, दूसरों को भी कहने दीजिये। बीच में बात मत काटिये, वरन् पूरी बात सुनने तक ठहरे रहिये। दूसरा किसी प्रसंग को कह रहा है, तो उसे पूरा कह लेने दीजिए। 'इसे तो हम जानते हैं' 'यह तो हम पहले ही मालूम है', ऐसा कहने से कहने वाले का तथा दूसरे सुनने वालों का मजा बिगड़ जाता है। अपने विचारों का विरोध होते देख धैर्य खोना उचित नहीं, यह कोई लाजमी बात नहीं है कि आपके विचार ठीक ही हों और उनके विरुद्ध मत रखने का किसी को अधिकार ही न हो। विरोधी पर बिगड़ मत खड़े होइये, वरन् धैर्यपूर्वक पूरी बात सुनिये और शांति के साथ तर्क और प्रमाणों द्वारा प्रत्युत्तर देकर पुनः अपनी बात की पुष्टि कीजिये।

जो बात आपको मालूम नहीं है, उसको गलत-सलत मत कहिए, वरन् प्रश्नकर्ता को अन्य जानकार व्यक्तियों या पुस्तकों की सहायता लेने के लिए कहिए। असमंजस में पड़ने या शरमाने की कोई बात नहीं है। कोई व्यक्ति पूर्ण ज्ञाता होने का दावा नहीं कर सकता। जो बात मालूम नहीं है उसके बारे में स्पष्ट कह देना उचित है, जिससे दूसरों को धोखा न हो और वस्तुस्थिति मालूम होने पर झूठा या बहानेबाज न बनना पड़े।

कोई लोग प्रश्न से बहुत घबराते हैं, उन्हें लगता है मानो कोई हमारे ऊपर आक्रमण कर रहा है, कुछ इल्ज़ाम लगा रहा है, कोई भेद मालूम कर रहा है या कुछ छीन रहा है। साधारण-सी बात के उत्तर में वे आपे से बाहर हो जाते हैं और अंट-संट बातें

कहने लगते हैं। यह अशंकित, अविश्वासी और अनुदार हृदय का लक्षण है। आप उत्तर देने में बहुत उदार रहिये। जानकारी की इच्छा से, पूछे गये प्रश्नों का नेकनीयती से उत्तर दिया जाए, तो प्रश्नकर्ता का यदि कोई अनुचित उद्देश्य रहा हो तो वह भी बदल जाता है। किसी को जानकारी बढ़ाना उसके साथ में एक प्रकार का उपकार करना है। उपकारी के प्रति कुछ न कुछ कृतज्ञता का भाव होता है, जिसके द्वारा दुर्भाव की किसी न किसी अंश में सफाई होती ही है। प्रश्न का उत्तर प्रश्न में देना बेहूदापन है। कोई पूछता है कि लकड़ी की दुकान कहाँ है ? आप उत्तर देते हैं—"मैं कोई उसका नौकर हूँ ?" ऐसे उत्तर अनुदारता और घमंडीपन प्रकट करते हैं। सरलता से 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दिया जा सकता है। पूछे गये प्रश्न के बारे में जितना जानते हैं उतना बता दीजिये, अन्यथा कह दीजिये—'मुझे मालूम नहीं।' सरलता और मधुरता से जो बात कही जा सकती है, उसके लिए प्रश्नवाचक उत्तर देकर कटुता उत्पन्न करने में कुछ अच्छाई थोड़े ही है।

अपरिचित व्यक्ति से वार्तालाप आरंभ करते हुए प्रश्नों की झड़ी लगा देना अनुचित है। आपका क्या नाम है ? कहाँ रहते हैं ? कौन जाति है ? क्या पेशा करते हैं ? कहाँ से आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? यह बातें अपरिचित होने की दशा में अचानक पूछना सभ्यता के विरुद्ध है। इसमें उत्तर देने वाले को बुरा लग सकता है, वह उपेक्षा कर सकता है या अंट-संट उत्तर दे सकता है। जब तक किसी के स्वभाव के बारे में कुछ जानकारी न हो तब तक अदालत जैसे गवाह पर प्रश्नों की झड़ी लगा देती है वैसा व्यवहार करना उचित नहीं। यदि किसी का परिचय प्राप्त करना है या स्तब्धता भंग करके वार्तालाप का सिलसिला चलाना है, तो किसी आम प्रसंग को लेकर शुरू करना चाहिए। वर्तमान मौसम, फसल, व्यापार, तात्कालिक परिस्थिति कोई अख़बारी खबर, सामने का कोई दृश्य आदि का आधार लेकर बातचीत आरंभ की जा

सकती है और फिर स्वभाव संबंधी जानकारी होने पर निजी पूछताछ तक बढ़ा जा सकता है।

कौन आदमी इस समय किस मनोदशा में है, इसको भाँपकर जो आदमी तदनुसार वार्तालाप की तैयारी करते हैं, वे अपना प्रयोजन सिद्ध करने में बहुत कुछ सफल होते हैं। अफसरों से मुलाकात करके काम निकालने वाले लोग पहले अर्दली से यह मालूम कर लेते हैं कि इस समय 'साहब' का मिजाज कैसा है ? यदि मिजाज अनुकूल देखते हैं, तो प्रयोजन प्रकट करते हैं अन्यथा किसी दूसरे अवसर की प्रतीक्षा तक अपनी बात को स्थगित रखते हैं। यह बात बड़े आदमियों या अफसरों के बारे में ही नहीं है, वरन् सर्वसाधारण के बारे में भी है। निजी कारणों से जब मनुष्य का चित्त डाँवाडोल हो रहा हो, शोक, चिंता, क्रोध या बेचैनी में निमग्न हो, तो उस समय कोई अप्रिय, भारी या उसकी दृष्टि में अनावश्यक जँचने वाला प्रस्ताव न रखना चाहिए, क्योंकि डाँवाडोल मनोदशा के कारण वह आपकी बात को न तो ठीक तरह समझ सकेगा और न उस पर उचित फैसला कर सकेगा, ऐसी दशा में प्रयास विफल ही रहेगा। यदि उसी दशा में अपनी बात कहना आवश्यक हो, तो पहले उसकी विषम मनोस्थिति के प्रति सहानुभूति प्रकट कीजिए और ऐसे अवसर पर इच्छा न रहते हुए भी कहने की मजबूती प्रकट करने के उपरांत अपनी बात को कहिए। इस प्रकार के डाँवाडोल स्वभाव के बारे में जब आप परोक्ष रूप से सावधान करा देते हैं, तो वह सजग हो जाता है और अपनी मनःस्थिति पर काबू रखकर आपकी बात को सुनता-समझता है। ऐसी दशा में किसी कदर अच्छे परिणाम की आशा की जा सकती है।

अपनी निजी बातें सब किसी के सामने प्रकट मत करिये। जिनके कहने से अपनी मूर्खता, गलती, गुप्त जानकारी का पता चलता हो, वह बातें केवल निजी और विश्वसनीय मित्रों से ही कहने योग्य हैं। अनधिकारी और साधारण परिचय वाले व्यक्तियों

तक वे बातें पहुँचे, तो अपनी महत्ता घटाती हैं, लघुता प्रकट करती हैं। आप अधिक कष्ट में हैं, अपमानित हुए हैं, घरेलू अनिष्टों से ग्रसित हैं, रुग्ण हैं, चिंतित हैं, तो उन बातों को उनके सामने न कहिए, जो निवारण तो कर नहीं सकते, वरन् मजाक बनाते हैं। जिस प्रकार गढ़े धन को प्रसिद्ध कर देना ठीक नहीं, उसी प्रकार भावी योजनाओं को, गुप्त रहस्यों को, न कहने योग्य बातों को भी छिपा रखना चाहिए। जिसके पेट में बात नहीं पचती उसे पोले बाँस को छिछोरा समझकर गंभीर वार्तालाप में कोई शामिल नहीं करता।

किसी कार्य व्यस्त आदमी से भेंट करनी हो, तो अपने प्रयोजन को संक्षेप में कह दीजिए और उसी मर्यादा में बहस करके थोड़े समय में किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाइये। संसार के कार्य व्यस्त महापुरुषों का समय बहुत मूल्यवान् होता है। ये मुलाकात करने वालों को कुछ मिनटें ही दे सकते हैं। यदि सिलसिले से आवश्यक बातों को न करके, बीच-बीच में अप्रासंगिक और बेतरीब बातें की जाएँ, तो समय की बहुत बर्बादी होती है। समय निरर्थक बातों में चला जाता है और आवश्यक बातें अधूरी छूट जाती हैं, इसलिए कार्य व्यस्त आदमियों के पास मिलने जावें तो जो बातें कहनी हैं, उनको क्रमबद्ध एक छोटे कागज पर नोट कर लीजिए और उन्हें उचित विस्तार के साथ जहाँ तक संभव हो संक्षेप में कह दीजिए। ऐसा करने से उनका बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट न होगा और आपको भी अधिक देर न लगानी पड़ेगी। समय बचाने का सदैव ध्यान रखिए, क्योंकि समय ही संपत्ति है। यदि आपके पास फालतू वक्त है, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरों के पास भी वैसी ही फुरसत है, आप ठलुए हैं, तो दूसरों को ठलुआ मत समझिए। दूसरों का खासकर कार्य व्यस्त लोगों का कम से कम समय बर्बाद कीजिए, उनका उतना ही समय लीजिए जितने में वे अनखने न लगें, उठ जाने के लिए सकेत न करने लगें। पत्र-व्यवहार में भी ऐसा ही कीजिए, बहुत लंबी, बेकार की

बातों से भरी हुई चिट्ठियाँ उन लोगों को मत लिखिए, जिनके पास बहुत काम रहता है। संक्षिप्त में प्रयोजन प्रकट करना, यही लाभदायक तरीका है अन्यथा बेकार के खर्रे बिना पढ़े मुद्दतों पड़े रहेंगे और उनका उत्तर न मिलने या विलंब से मिलने की अधिक संभावना रहेगी।

मुस्कराकर, प्रसन्नता प्रकट करते हुए बातचीत करना एक बहुत ही आकर्षक ढंग है, जिसके द्वारा सुनने वाले का अनायास ही आपकी ओर खिंचाव होता है। जब आप मुस्कराते हुए आनंदित होकर अपना कथन आरंभ करते हैं, तो उसके दो तात्पर्य निकलते हैं, पहला यह कि आप मनस्वी हैं, दृढ़ निश्चयी हैं और सुलझे हुए विचारों के हैं। दूसरा यह कि सुनने वाले से मिलकर आप प्रसन्न हुए हैं, उसके प्रति प्रेम भाव रखते हैं। मुस्कराहट मन की दृढ़ स्थिति को सूचित करती है। जिसके विचार संदिग्ध हैं, नाना प्रकार के भावों का उतार-चढ़ाव चेहरे पर प्रदर्शित करता है, उसे अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे आदमी के व्यक्तित्व की कोई अच्छी छाप दूसरे पर नहीं लगती। किंतु यदि प्रसन्नता चेहरे पर खेल रही है, तो उसका तात्पर्य दृढ़ता, गंभीरता और पूर्णता है। उसे सुलझा हुआ सुस्थिर समझकर स्वभावतः विश्वास करने की इच्छा होती है। मुस्कराहट में दूसरा तात्पर्य है—सुनने वाले के आगमन से खुशी प्रकट होना, यह भी असाधारण बात है। जहाँ उपेक्षा होती है, वहाँ संबंध रखना लोग पसंद नहीं करते, पर जहाँ प्रेम और सत्कार का भाव टपकता है, वहाँ बार-बार जाने की इच्छा होती है। थोड़ी असुविधा उठाकर भी वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है, क्योंकि वहाँ दुहरा लाभ है, साधारण काम तो पूरा होता ही है, साथ में प्रेम और आदर की आत्मिक खुराक मुफ्त में मिल जाती है। प्रसन्नता के साथ वार्तालाप करने के दोनों ही पहलू एक से एक जोरदार हैं। विश्वासी आदमी से व्यवहार में धोखा होने का अंदेशा नहीं रहता। उसकी मानसिक स्थिरता से अन्य

लाभ प्राप्त होने की आशा रहती है, अतएव उससे संबंध रखना वैसे भी लाभदायक ठहरता है।

आप जिन लोगों का संबंध अपने साथ अधिक समय तक रखना उचित समझते हैं, उनसे मुस्कराकर बोला कीजिए, प्रसन्नता प्रकट करते हुए बातचीत किया कीजिए। यह ऐसा बे-पूँजी का व्यापार है, जिसमें खर्च बिल्कुल नहीं और आमदनी बहुत है। जब आप थोड़ा हँसते हैं तो खिलते हुए पुष्प की भाँति अपनी सुगंधि चारों ओर बिखेर देते हैं। उसकी सुगंधि से दर्शकों और श्रोताओं का मन लुभायमान हो जाता है। पुष्प में रूप और गंध है, मुस्कराहट में सौंदर्य और मिठास है। भौंरे और मधुमक्खियों का जमघट फूल पर रहता है। आपकी मुस्कराहट पर मुग्ध होकर संबंधियों का समूह पीछे-पीछे लगा फिरेगा।

आत्मीयता प्रकट करने का अच्छा तरीका यह है कि बराबर वालों का और छोटों का आदरपूर्वक नाम लेकर पुकारिए। नाम के पहले पंडित, बाबू या लाला आदि विशेषण लगायें, पीछे शर्मा, वर्मा या गुप्ता आदि गोत्र सूचक पदवी लगाने से नाम आदरयुक्त हो जाता है। वार्तालाप के सिलसिले में बराबर वालों का नाम बीच-बीच में कई बार लिया कीजिए। इस तथ्य को समझ लीजिए कि—"मनुष्य का नाम उसकी भाषा में उसके लिए सबसे मधुर और सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है।" अपना नाम लिया जाते सुनकर मन में एक गुदगुदी-सी उत्पन्न होती है, क्योंकि उसमें अपनेपन का भाव है, आत्मीयता का सम्मिश्रण है। महाशय जी, महानुभाव, श्रीमान् जी आदि शब्द छूँछे और आडंबरमय हैं। इनसे अपनापन प्रकट नहीं होता, इसलिए सुनने वाले को कोई विशेष आकर्षण नहीं दिखाई पड़ता, किंतु आदरपूर्वक नाम लेकर पुकारने से सुनने वाले का हृदय हुलस आता है।

बड़ों को उनकी आरंभिक पदवी के साथ 'जी' लगाकर पुकारा कीजिए, जैसे पंडित जी, लाला जी, ठाकुर साहब आदि। यदि उनका कोई और विशेषण है, जैसे—नंबरदार, वैद्य जी,

डॉक्टर साहब, खजानची साहब, तो उसे कहिए। यदि अधिक निकट का परिचय है, तो रिश्तेदारी सूचक संबोधनों का प्रयोग करिए, जैसे चाचा जी, बाबा साहब, भैया जी, ताऊ जी आदि। कुछ रिश्ते जो लघुता सूचक हैं उन्हें कहना उचित नहीं, जैसे साला, भतीजा, भाभी, साली आदि। छोटों को बेटा, नोनी कहकर नहीं पुकारना चाहिए, वरन् लल्लू, कुँवर साहब जैसे प्रिय शब्दों को काम में लाना चाहिए। स्त्रियों को बेटी, बहिनजी या माताजी शब्द ही आमतौर पर काम में लाने चाहिए। खास रिश्ते की बात अलग है, जिनसे दूर का रिश्ता है उन्हें इन्हीं तीन रिश्तों के अंतर्गत आना चाहिए।

इस प्रकार रिश्तेदारी, पदवी मात्र नाम तथा आदरपूर्वक नाम लेकर लोगों को संबोधन किया करें, तो आप निश्चय ही दूसरों पर अपनी आत्मीयता की छाप जमाने में समर्थ होंगे और बदले में उनकी आत्मीयता प्राप्त करेंगे। बोलने में यह बहुत मधुर साधन है कि दूसरे को यथोचित रीति से नाम के निजीपन के साथ पुकारा जाए। आप प्रेम संबंधों की वृद्धि करना चाहते हैं, परायों को अपना बनाना चाहते है, घनिष्टता बढ़ाना चाहते हैं, तो उनके कानों में रस टपकाइये। अपना नाम सबसे मधुर शब्द है, इस शब्द को एक से अधिक बार कहिए, संबोधन की आवश्यकता पड़ने पर उसी का उपयोग करिए।

❑ ❑

दूसरों को अपने मत का बनाने का उपाय

सबकी बुद्धि एक समान नहीं है। आत्म निरीक्षण करने की, अपने आपको जाँचने की योग्यता सब किसी में नहीं होती। स्वर्गीय डान टॉमस कहा करते थे कि—"इस दुनिया में नब्बे प्रतिशत आधे पागल रहते हैं" आधे पागल न भी हों, तो भी इतना तो निश्चय ही मानना पड़ेगा कि आत्मपरीक्षण करने और वस्तुस्थिति को समझने की योग्यता बहुत कम लोगों में होती है। वे भावावेश, कल्पना की उड़ान और स्वतंत्र धारणा के अनुसार अपने-अपने मत निर्धारित करते हैं, इस मत निर्माण में विचारशीलता की नहीं, वरन् अंध विश्वास की प्रधानता होती है। जहाँ विचारशीलता की प्रधानता है, वहाँ गलती समझने और स्वीकार करने की क्षमता होगी, किंतु ऐसे सौभाग्यशाली स्त्री-पुरुष अभी इस भूतल में उँगलियों पर गिनने लायक हैं, अधिकांश तो असंस्कृत मस्तिष्क के ही पड़े हुए हैं, व्यवहार उन्हीं से पड़ता है। ऐसी दशा में नीति और कुशलता से काम न लिया जाए तो अच्छे परिणाम की आशा नहीं की जा सकती।

जब आपको किसी की गलती बतानी है, तो पहले उसके साथ सहानुभूति प्रकट करिए। जिस स्थिति में वह गलती हुई, उस स्थिति की पेचीदगी के कारण वह वैसा करने को मजबूर हुआ ऐसा प्रकट करिए, क्योंकि यदि जान-बूझकर भी उसने गलती की है, तो वैसा कहकर उसकी लोक-लज्जा को नष्ट करना उचित नहीं, क्योंकि अपने को मूर्ख सिद्ध न होने देने के लिए वह दुराग्रह करेगा और गलती को गलती ही साबित न होने देगा, उलटा दुराग्रहपूर्वक उसका समर्थन करेगा। लड़-झगड़कर आप अधिक से अधिक किसी को चुप कर सकते हैं, पर इससे वह उस बात को मानने के लिए मजबूर न हो जाएगा, वरन् अपने अपमान का बदला लेने के लिए उसी पर अड़ बैठेगा।

उस समय की परिस्थिति से मजबूर होकर, दबाव से या अन्य कारणवश वैसा करना पड़ा होगा, ऐसा कहने से गलती को स्वीकार करना सरल हो जाता है। 'गलती बताकर अपनी बुद्धिमानी साबित की जा रही है' ऐसी आशंका भी उसके मन में मत उपजने दीजिए। जिस प्रकार की भूल उस आदमी से हुई है वैसी ही अन्य लोग भी करते हैं या कर चुके हैं, ऐसे उदाहरण बताने से गलती स्वीकार करने में उसे विशेष हिचकिचाहट नहीं होती। यदि आपसे स्वयं वैसी ही या उससे मिलती-जुलती कोई भूल हुई है, तो उसका उदाहरण देकर सुनने वाले को निश्चिंत कर सकते हैं कि उसको नीचा साबित करने के लिए वह बात नहीं कही जा रही है। आम लोगों के सामने इस प्रकार के वार्तालाप करने की अपेक्षा एकांत में करना अधिक उपयोगी है, क्योंकि वहाँ प्रतिष्ठा घटने की अधिक आशंका उसे नहीं रहती और सच्चाई की तह तक पहुँचने में किसी हद तक मार्ग सुगम हो जाता है।

जिसने गलती की है उसे अपराधी या पापी कहा जा सकता है, पर ऐसा कहना हानिकर है, क्योंकि इससे उसके तामस स्वभावों को प्रोत्साहन मिलेगा। जब अपराधी, पापी, दुष्ट, दुरात्मा, मूर्ख, नालायक उसे साबित किया जा रहा है, तो हो सकता है कि अपने सद्गुणों और सात्त्विक स्वभावों की संभावना पर अविश्वास करने लगे और निर्लज्जतापूर्वक दुर्बुद्धिग्रस्त लोगों की श्रेणी में खड़ा होकर अधिक नीचता पर उतर आये। इसलिए गलती को भूल के नाम से ही पुकारिये, पाप या अपराध का कर्ण कटु नाम प्रयोग मत कीजिए। भूल को सुधारना आसान बताइये, त्रुटिरहित जीवन की महत्ता बताइए और उसे फिर से सुधारने के लिए प्रोत्साहित कीजिए। जिसने गलती की है वह अपने को पवित्रता से रहित और सुधरने में असमर्थ समझने लगता है, इस धारणा को धैर्य बँधाकर, गलती को छोटी बताकर, प्रोत्साहन देकर, जैसे भी बन सके दूर करना चाहिए। कटु वचन कहकर किसी का दिल

तोड़ देना आसान है, ऐसा तो एक बेवकूफ भी कर सकता है। आपका कार्यक्रम ऊँचा होना चाहिए, दिल बढ़ाने का, सही मार्ग पर लाने का प्रयास कठिन है। आपकी बुद्धि को यह चुनौती दी जाती है कि वह कठिन प्रयास द्वारा उपयोगी कार्य संपादन करके अपनी महत्ता साबित करे।

किसी को हुक्म मत दीजिए कि तुम यह करो, तुम वह करो, हुक्म देने का तरीका सेना में अच्छा समझा जाता है, परंतु सामाजिक जीवन को हम लोग सैनिकों की तरह नहीं, वरन् सहयोग के साथ, भाई-चारे के आधार पर व्यतीत करते हैं। इसमें हुक्म देने की पद्धति कारगर नहीं होती। वेतनभोगी नौकर भी यह चाहता है कि मुझे केवल मशीन का जड़ पुर्जा न माना जाए। जिस कार्य में अपना विचार समन्वित नहीं होता, जिस कार्य में अपनी निजी दिलचस्पी नहीं जोड़ता, वह कार्य आधे मन करने से, बेगार की तरह किया जाता है। 'पराया-जराया' यह कहावत मशहूर है। दूसरे के काम को ऐसे किया जाता है, मानो जराया हुआ हो; जला दिया गया हो। साधारणतः हुक्म बजाने में अपनी लघुता साबित होती है और लघुता, परवशता के विरुद्ध विद्रोह की इच्छा उठा करती है। आपने देखा होगा कि छोटे बालक जिन्हें आज्ञापालन से हानि का भय नहीं होता अक्सर हुकुम उदूली किया करते हैं, उन्हें यह पसंद नहीं होता कि पराधीन की तरह आज्ञापालन के लिए मजबूर होना पड़े। बड़ा होने पर मनुष्य लोभ या भय के कारण हुक्म बजाता है, पर आंतरिक इच्छा उसकी वैसी नहीं होती। विश्व में आजकल स्वतंत्रता की तीव्र माँग है। स्वतंत्रता के लिए मानव जाति घोर संघर्ष कर रही है, बड़ी-बड़ी कुर्बानी कर रही है, अध्यात्मवादी भी मुक्ति चाहते हैं—मुक्ति या स्वतंत्रता एक ही वस्तु के दो नाम हैं। सब कोई पराधीनता से छुटकारा पाना चाहते हैं, उसे कतई पसंद नहीं करते।

आप अपना हुक्म देने की भाषा में सुधार कीजिए। जो कुछ कहना हो प्रभाव के रूप में कहिए, सलाह देने के रूप में कहिए,

फैसला उसे स्वयं करने दीजिए। अपनी बात को इस तरह रखिए, जिससे निर्णय खुद उसे ही करना पड़े और वह निर्णय वही हो जो आप चाहते हैं। 'मुझे पानी पिलाओ' ऐसा आज्ञा सूचक वाक्य कहने की अपेक्षा ऐसा कहिए कि "क्या आप मुझे पानी पिला सकते हैं ?" या "क्या आप मुझे पानी पिलाने की कृपा कर सकते हैं ?" यह वाक्य प्रस्ताव के रूप में है। निश्चय ही इसका अच्छा परिणाम निकलेगा। वह उत्तर देगा—"हाँ, पिला सकता हूँ, लीजिए अभी पिलाता हूँ।" प्रस्ताव पर निर्णय की छाप उसने खुद लगाई है, इसलिए निश्चय ही अपनी बात को पूरा करने के लिए वह उस काम को शीघ्र और अच्छे ढंग से करेगा। यदि हुक्म की तरह वह बात कही होती, तो अनिच्छापूर्वक वह काम होता, विलंब से होता, दिलचस्पी के अभाव में उसका सौंदर्य नष्ट हो जाता। इसलिए आप अपनी बात को हुक्म की भाषा में नहीं, प्रस्ताव की तरह दूसरों के सन्मुख उपस्थित किया कीजिए, निर्णय करने का अवसर उसे ही दिया कीजिए। यदि निर्णय आपकी रुचि का न हो तो उसमें संशोधन कीजिए, परंतु उसमें भी प्रस्ताव की ही भाषा काम में लाइये, अंततः उससे वही निर्णय करा लीजिये, जो बात आप चाहते हैं। इस तरीके में आज्ञा देने की अपेक्षा कुछ शब्दों का अधिक उच्चारण करना पड़ेगा, पर स्मरण रखिए, यह कष्ट आपके लिए कई गुना सुफल उत्पन्न करेगा।

आप जिस कार्यक्रम की कोर दूसरों को खींचना चाहते हैं, उसकी तीव्र चाह उत्पन्न करिये। उसे यह बताइये कि नवीन कार्य पुराने कार्य की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। 'इंद्रिय असंयम बुरा है, इतना कह देने मात्र से काम न चलेगा। यदि किसी को ब्रह्मचर्य के पथ पर अग्रसर करना चाहते हैं, तो स्वस्थ और सुंदर ब्रह्मचारियों का उदाहरण सामने उपस्थित करिये और स्पर्धा उत्पन्न कीजिए कि वह भी ऐसा ही भरे हुए गुलाब से चेहरे का सौंदर्य प्राप्त करे, शरीर को सुडौल, बलवान् और निरोग बनावें। इन लाभों की ओर जितना ही आकर्षित किया जा सकता है, उतना ही वह

ब्रह्मचर्य पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हो जायेगा। काम करना कोई पसंद नहीं करता, सब चाहते हैं; बैठे-ठाले बिना मेहनत किये चैन से गुजरती रहे। परिश्रम का अप्रिय काम करने के लिए तब प्रेरणा मिलती है, जब उससे कच्चा फल मिलने की आशा होती है। जोखिम से भरे हुए, खतरनाक और दुस्साध्य कामों का भार विशेष लाभ की आशा से उठाया जाता है। इसलिए आप जिस कार्य के लिए दूसरों को तैयार करना चाहते हैं, उसे समझाइये कि इसमें कौन-कौन लाभ मिल सकते हैं ? निकृष्ट कोटि के चोरी, व्यभिचार, ठगी आदि कामों के लाभ बहुत ही निकृष्ट और प्रत्यक्ष रूप से हानिकर होते हैं, इसलिए उनकी ओर लोग आसानी से ढुल जाते हैं। उच्च कोटि के, सात्त्विक, ईमानदारी, सच्चाई, प्रेम, न्याययुक्त कार्यों के लाभ उतने निकट या प्रत्यक्ष नहीं होते तथा उनमें श्रम भी अधिक पड़ता है। यदि दूसरों को इस प्रकार के कष्टसाध्य कार्यों में प्रवृत्त करना है, तो उन कार्यों के द्वारा प्राप्त होने वाले सुखों, लाभों और उत्तम परिणामों को विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। उदाहरण, अनुभव, तर्क और परिणाम द्वारा इन लाभों को इस प्रकार उपस्थित करिये कि सिनेमा के चित्र की तरह वह सब बातें उसके नेत्रों में घूम जायें, हृदय के अंतःपटल पर भली-भाँति अंकित हो जायें।

तीव्र चाह उत्पन्न करना, किसी कार्य की ओर आकर्षित करने का सबसे प्रभावशाली तरीका है। अमुक कार्य भला है, अमुक बुरा है, अमुक पुण्य है, अमुक पाप है, इतना कह देने मात्र से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। साधारण बुद्धि के मनुष्य को भय और लोभ इन दो ही तत्त्वों के कारण कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। लाभ के लोभ से प्रवृत्ति होती है और भय से निवृत्ति होती है। जिस काम को करने से दूसरे को रोकना चाहते हैं, उसके करने में जो भय, आपत्ति, हानि, अनिष्ट उत्पन्न होने की आशंका है, उसे भली प्रकार हृदयंगम कराइये। वेश्यागमन की ओर जिसकी प्रवृत्ति है उसे उपदंश होने के भय से भली-भाँति भयभीत कर देने पर उस

कुकर्म से रोका जा सकता है। उपदंशजनित कष्ट, बदनामी, क्रियाशीलता का अंत, भोगों से बिल्कुल वंचित हो जाना, धन नाश आदि, यह सब भय और आशंकाएँ उस व्यक्ति के मन में बिठाई जा सकें, तो निस्संदेह उसका कुमार्ग गमन रुक जाएगा। दंड देकर, प्रतिबंध लगाकर या बलपूर्वक रोकने की अपेक्षा यह उत्तम है कि जिस मार्ग से किसी को रोकना चाहते हैं उसके मन में तत्संबंधी हानि और आशंकाओं का मूर्तिमान् चित्र खड़ा करें और उसे स्वयं ही वह कार्य बंद करने का निर्णय करने दें। किसी को एक कार्य से हटाकर दूसरे कार्य पर लगाने का प्रश्न यदि कभी आपके सामने आये, तो नये काम के लाभों का विषद वर्णन करके उस ओर दिलचस्पी पैदा कर तथा पुराने कार्य की हानियों का मूर्तिमान् चित्र बनाकर भयभीत करने का प्रयत्न किया कीजिये। जो लोग विवेक और विनय से नहीं समझते, उनकी चेतना अभी निर्बल है, उस पर लोभ एवं भय द्वारा प्रभाव डालना ही संभव है। पशु को घास दिखाकर या लाठी का भय दिखाकर ही कहीं ले जाया जा सकता है, अल्प विवेक वाले लोगों को आप भी इन्हीं साधनों से प्रभावित करके उत्तम और उचित मार्ग पर ले चलने का प्रयत्न किया कीजिए।

मानव मनोवृत्तियों के सुयोग्य अन्वेषक डेल कारनेगी ने एक बहुत ही उत्तम शिक्षा दी है। वे कहते हैं—"यदि आप मधु इकट्ठा करना चाहते हैं, तो मक्खियों के छत्ते को ठोकर मत मारिए।" जिन लोगों से संबंध जारी रखे बिना काम नहीं चल सकता। जिनके द्वारा आपकी आजीविका चलती है, ऐसे संबंधी तथा ग्राहकों को अकारण क्रुद्ध मत कीजिए। एकांत में अत्यंत शांतिपूर्वक, हानि-लाभ का दिग्दर्शन कराते हुए गलती करने वाले को आसानी से समझाया जा सकता है, इसमें सुधरने की बहुत कुछ संभावना रहती है। इसके विपरीत सबके सामने हुई आलोचना करने से बुराइयों में सुधार होना तो दूर उलटे बैर-विरोध तथा दुराग्रह की जड़ जम जाती है।

आप जो कार्य करने के लिए दूसरों से कहें उसे आसान बताइये। लोगों को यह विश्वास कराइये कि इसमें अधिक सरलता रहेगी और कठिनाई कम हो जाएगी। अपने कार्यक्रम पर किसी को सहमत करने के लिए उसे यह विश्वास कराना आवश्यक है कि यह असंभव, दुसाध्य बिरले शूरवीरों के करने योग्य नहीं, वरन् बहुत ही सरल, पूर्णतया संभव और साधारण मनुष्य से पूरा हो सकने योग्य है। अनेक व्यक्ति उस मार्ग पर चल चुके हैं और चल रहे हैं, उन्हें कोई ऐसी कठिनाई नहीं उठानी पड़ी, जो असाधारण हो। स्मरण रखिए, सरलता को टटोलकर उधर ही लोग झुकते हैं। आप अपने कार्य की आसानी प्रकट कीजिए और बताइये कि वह बिना विशेष झंझट के स्वल्प श्रम, स्वल्पकाल और स्वल्प-साधनों से पूरा हो सकता है। यदि आप पहले कार्य को 'तलवार की धार पर चलना' बतायेंगे, उसमें आने वाली विघ्न-बाधाओं को दुस्तर बतायेंगे, तो आरंभ में ही हिम्मत टूट जाने के कारण उस पथ पर चलने के लिए कोई मनुष्य मुश्किल से ही तैयार होगा।

स्वयं कम बोलिए और दूसरों को अधिक बोलने दीजिए। आप एक घंटे अपनी बात कहकर किसी का मन उतना अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते, जितना कि आधा घंटा उसे अपनी बात कहने देकर कर सकते हैं। अच्छा वक्ता होने का प्रधान लक्षण यह है कि अच्छा श्रोता बनना चाहिए।

आप अपने को प्रशंसित बना लीजिए। दूसरों में जिन सद्गुणों को देखें, जिन सद्वृत्तियों का विकसित होता हुआ पावें उन्हें और अधिक उन्नत करने के लिए प्रोत्साहित करें। मुरझाकर सूख जाने की तैयारी में खड़े हुए पौधे जल से सिंचित होते ही दूसरे ढंग के हो जाते हैं। उनकी गतिविधि तुरंत ही बदल जाती है। कुम्हलाये हुए पत्ते भी सतेज दिखाई पड़ने लाते हैं। प्रशंसा का जल ऐसा ही जीवनदाता है। सूखे हुए अंतःकरणों में वह आशा और उत्साह का संचार करता है। वर्षाऋतु में पौधे बल्लियों बढ़ जाते हैं, मेघों का स्नेह बूँद पीकर वनस्पति जगत् का रोम-रोम

तरंगित होने लगता है। वर्षाऋतु में मखमल की-सी हरियाली चारों ओर छा जाती है, ऊसर भूमि भी सुशोभित दीखती है। चट्टानों का मैल धुल जाने से उनकी स्वच्छता निखर जाती है। आप यदि प्रशंसा द्वारा दूसरों के मुरझाये हुए हृदयों को सींचना आरंभ कर दें, कानों की राह आत्माओं को अमृत पिलायें, तो ठीक वैसा ही कार्य करेंगे जैसा कि परोपकारी मेघ किया करते हैं। तवे के समान जलता हुआ भूतल मेघमाला का स्नेह पीकर तृप्त होता है और वनस्पतियों का हरा-भरा आशीर्वाद उगलता है। परोपकार और आशीर्वाद के सम्मिश्रण से बड़ी ही शांतिदायक हरियाली उपज पड़ती है और विश्व की असाधारण सौंदर्य वृद्धि करती है। क्या आपको यह कार्य पद्धति पसंद है ? यदि है तो अपने चारों ओर बिखरे पड़े हुए असंख्य, अतृप्त और अविकसित हृदयों को अपनी प्रोत्साहनमयी मधुर वाणी से सींचना आरंभ कर दीजिए, वे हरे-भरे स्वच्छ उत्फुल्ल हो जायें। उनके सद्गुण, वर्षा की वनस्पति की तरह तीव्रगति से बढ़ने और फैलने-फूटने लगें।

यह बहुत ही उच्च कोटि का पुनीत धर्म कार्य है। अंतःकरण की चिर तृषा इससे तृप्त होती है, उन्नति के रुद्ध स्रोत खुलते हैं, अविकसित सद्वृत्तियाँ प्रस्फुटित होती हैं, छिपी हुई योग्यताएँ जाग्रत् होती हैं और निराशा के अंधकार में आशा का दीपक एक बार पुनः जगमगाने लगता है। निंदा और भर्त्सना ने अनेक उन्नतमना लोगों को निराश, कायर, भयभीत और निकम्मा बना दिया। हम ऐसे लोगों को जानते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से उन्नतिशील थे, उनमें अच्छी योग्यताओं के अंकुर मौजूद थे, पर उनका संपर्क बड़े दुर्बुद्धिग्रस्त संरक्षकों के साथ में रहा। जरा-जरा-सी बात पर झिड़कना, मूर्ख बताना, नालायकी साबित करना, अयोग्यता का फतवा देना—यह ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा माता-पिता अपने बालकों की, मालिक अपने नौकरों की, गुरुजन अपने शिष्यों की आशा कली को बेदर्दी के साथ कुचल डालते हैं। निरंतर भर्त्सना करते रहने से न तो कुछ सुधार होता है और न

कोई उन्नति होती है, केवल इतना ही परिणाम निकलता है कि वह अपने बारे में निराशाजनक भावनाएँ धारण करता है, अपने को अयोग्य मानने लगता है, उसका दिल बैठ जाता है और धीरे-धीरे निर्लज्ज होकर उसी अवनति के ढाँचे में ढलता जाता है।

जिस व्यक्ति में दूसरों को निराश करने की, जरा-जरा से दोषों को बढा-चढ़ाकर कहने की, झिड़कने की, निंदा करने की, निरुत्साहित करने की आदत है—वह सचमुच बड़ा भयंकर है। व्याघ्र आदि हिंसक-जंतु जिस पर आक्रमण करते हैं, उसे क्षण भर में फाड़कर खा जाते हैं, परंतु गिराने वाले निंदा सूचक शब्दों का प्रयोग करने का जिसे अभ्यास हो गया है, उसकी भयंकरता व्याघ्र से अधिक है। सूखा मसान बालकों का कलेजा चूसकर उसे ठठरी बना देता है। इस प्रकार निंदा सूचक वाक्य प्रहारों से भीतर ही भीतर दूसरे का कलेजा खाली हो जाता है। यदि आप प्रशंसा करने और प्रोत्साहन देने की नीति को अपना लेते हैं, तो इसके द्वारा अनेकों व्यक्तियों को ऊँचा उठाने में, आगे बढ़ाने में, सहायक होते हैं। हो सकता है कि कोई क्रियाशील व्यक्ति आपके द्वारा प्रोत्साहन पाकर उन्नति के प्रकाशपूर्ण पथ पर चल निकले और एक दिन ऊँची चोटी पर जा पहुँचे। क्या आपको उसका श्रेय न मिलेगा ? क्या उस महान् कर्म साधना में आप पुण्य के भागी न होंगे ?

❑ ❑

मुद्रक युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा